श्रावकधर्म-प्रकाश

लेखक
मुनि श्री धनराज (प्रथम)

प्रकाशक :
लूणकरण लाभचन्द
तिलोकचन्द मोहनलाल पुगलिया

प्राप्ति स्थान

(१) श्री जैन श्वेताम्बर तेरापन्थी सभा,
पो० श्री डूंगरगढ़ (चूरू)

(२) पुगलिया ब्रादर्स,
पो० श्री डूंगरगढ़ (चूरू)

(३) सोहनलाल हनुमानमल,
नं० ४६, स्ट्राण्ड रोड, कलकत्ता ७

(४) सोहनलाल फूसराज,
पो० धुबड़ी (आसाम)

(५) नथमल घमण्डीराम
पो० बड़पेटा रोड,
जि० कामरूप (आसाम)

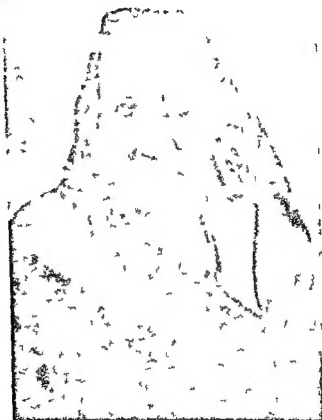
प्रथम संस्करण २२००
वि० सं० २०२४
मूल्य १)२५

मुद्रक
रेफिल आर्ट प्रेस,
३१ बड़तल्ला स्ट्रीट
कलकत्ता ७

समर्पण

आदर्श श्रावक समाज का निर्माण करने के लिए जो नित्य-नए
उपक्रम उपस्थित कर रहे हैं—उन जैन श्वेताम्बर तेरापंथ
के गणाधिशास्ता आचार्य श्री तुलसी
के चरण कमलों में

यह श्रावकधर्म प्रकाश



स्वर्गीय राधिका श्री प्रेमी बाई

श्राविका "प्रेमी बाई"—एक परिचय

धम के मूलाधार चार तीर्थों मे श्रावक-श्राविकाओं की महत्ता कम नहीं है। धम शासनोद्यान को उन्होंने त्याग, तप, वैराग्य एव यथा वृत्य से परिसिंचित कर सदव पल्लवित-पुष्पित रखा है। जन साधारण के लिए ऐसे दविव्यमति मानवों का चरित्र प्रेरणा का एक अक्षय स्रोत बन जाता है।

श्राविका प्रेमीबाई का जन्म वि० स० १६५६ में श्री डूगरगढ़ के झाबक परिवार में हुआ। आपके पिताजी का नाम श्री जेठमलजी था। ग्यारह वर्ष की अल्पायु मे ही आपका विवाह पुगलिया परिवार में श्री भीमराजजी पुगलिया के साथ सम्पन्न हुआ। आपने अपने जीवन में निश्छलता, सादगी व धर्मानुराग को विकसित किया।

सं० १६८६ मे आचार्य श्री कालू गणिराज के यहां पधारने पर आपने अपने ज्येष्ठ पुत्र श्री मूमरमल को आचार्य श्री के चरणों में भेंट कर दिया, जो आज भी शासन सेवा में रत है। धर्म शासन को उनकी यह भेंट अप्रतिम कही जा सकती है। स० २००१ में आपने अपने जीवन को श्रावक के बारह व्रतों को अंगीकार कर संयम साधना की ओर द्रुतगति से अग्रसर किया।

स० २००७ मे पति वियोग के कराल आघात को सहन कर अपूर्व मानसिक दृढ़ता का परिचय देते हुए आपने अपने जीवन को त्याग, तप व साधना के सांचे में ढाल दिया। प्रत्येक चातुर्मास की

तपस्या मे आपका स्थान सर्वोपरि रहा। आपकी कतिपय तपस्याए इस प्रकार है — [illegible], [illegible], [illegible], [illegible] एव १ से १६ तक की लडी, १२ वर्ष तक लगातार एकान्तर व अनेक थोकडे, उपवास, बेला, पौषध आदि है।

अनेकों वर्षों की निरन्तर तपस्याओं व वाधक्य के कारण शरीर क्षीण हो गया था। चलने फिरने की शक्ति काफी कम हो गई थी। किन्तु उनका मनोबल अदम्य था। आपकी तीव्र इच्छा थी मुनि श्री झूमरमलजी के दर्शन करने की जो कि उनके संसार पक्षीय पुत्र हैं। उनकी भावना को देखकर आचार्य वर से मुनि श्री को दर्शनार्थ भेजने की अर्ज की गई। आचार्य देव ने उनकी भावना से मुक्त होकर तत्काल मुनि श्री धनराजजी (प्रथम) को श्री डूँगरगढ जाकर उन्हें दर्शन देने का हुक्म फरमाया। उनका ससार पक्षीय पुत्र मुनिश्री झूमरमलजी जो उनके साथ ही थे, का दर्शन सुलभ करा दिया।

मुनि श्री ने अपनी माता की अन्तिम इच्छा सेवा, दर्शन एव सथारा देकर पूर्ण की एव उनकी नैया भवसागर से पार लगा दी।

उनके जीवन की सबसे उल्लेखनीय बात यह थी कि मृत्यु के पाच दिन पूर्व उन्होंने अपनी मृत्यु के काल का आभास पाकर सबको बता दिया था कि उनका आयुष्य चलना ही है मुनि श्री के आदेशानुसार यह बात नोट कर ली गई। दो दिन पश्चात फाल्गुन सुदी ७ को दिन के १ ३० बजे उनकी स्वेच्छा से सागार तिविहार सथारा पचख वाया। उन्होंने पुन मृत्युकाल का आभास पाते हुए कहा कि अब उनका

आयुष्य सिर्फ तीन दिनों का है। उसी दिन शाम को ६.३० बजे मुनि श्री मूमरमलजी ने उन्हें यावज्जीवन तिविहार संथारा करा दिया। फाल्गुन सुदी ६ को दिन के १२.४५ बजे चौविहार संथारा करवाया व उसी रोज शाम को ७.३१ बजे आपने मुक्ति लाभ लिया। इस अवसर पर उनके पाचों पुत्र (मुनिश्री मूमरमलजी सहित) पुत्री, पौत्र, दोहित्र—दोहित्रियाँ आदि सभी उपस्थित थे।

मुनि श्री धनराजजी व साधु-साध्वियों का संथारे में अपूर्व योग रहा जिससे उन्हें अपूर्व आत्मबल मिला।

मुनि श्री धनराजजी ने आत्म त्याग की इस बेला का वर्णन दो गीतों में अतीव सुन्दर रूप से मुखरित किया है। दोनों गीत इस पुस्तक में प्रकाशित है।

आदिकथन

भगवान् महावीर ने श्रावकों को धर्म के सहायक तथा साधुओं के माता पिता के तुल्य कहा है। वे हर वक्त साधुओं के हितचिन्तन में लगे रहते हैं एवं अपनी विविध सेवाओं द्वारा उन्हें संयम साधना में सहायता देते रहते हैं।

जैन शास्त्रों में साधुओं की तरह श्रावकों की भी अच्छी खासी महिमा गाई गई है। उपासकदशाङ्ग-सूत्र तो केवल श्रावकों के आदर्श-जीवन का दिग्दर्शन कराने के लिये ही लिखा गया हो—ऐसा लगता है। वास्तव में साधु श्रावक का जोड़ा है। धर्मशासन का गौरव बढ़ाने में श्रावकों की भी साधुओं के समान ही परमावश्यकता है।

लेकिन श्रावक नाम के न होकर श्रावकोचित आदर्शगुणों से सम्पन्न होने चाहिए। जैन शास्त्रों में सम्यक्त्व एवं व्रत श्रावकों के आदर्श गुण माने गये हैं। प्रस्तुत पुस्तक में मुख्यतया सम्यक्त्व मूलक श्रावकों के बारह व्रतों का विवेचन किया गया है। इसमें पन्द्रह पुञ्ज (अध्याय) हैं।

उनमें क्या है ?

पहले पुञ्ज में 'श्रावक' शब्द का अर्थ, श्रावक के गुण, श्रावक के भेद, सम्यक्त्व की परमावश्यकता एवं अर्हन्नक कामदेव की

धर्मदृढ़ता का वर्णन है। दूसरे से तेरहवें पुञ्ज तक बारह पुञ्जों में बारह व्रतों का विवेचन है। प्रत्येक व्रत की व्याख्या, भेद एवं अतिचार प्रश्नोत्तर रूप में अतिसरल भाषा में समझाने का प्रयत्न किया गया है और व्रतों से सम्बन्ध रखने वाले अनेक ज्ञातव्य विषय भी तत्स्थानों में लिखे गये हैं। चौदहवें पुञ्ज में श्रावक की ग्यारह पडिमाएँ व सलेखना संथारा करने की विधि बतलाई गई है एवं पन्द्रहवें पुञ्ज में श्रावक की दिनचर्या, तीन मनोरथ, चार विश्राम व श्रावकों के प्रकारों का दिग्दर्शन है।

आधारभूत ग्रन्थ

इस पुस्तक की रचना यद्यपि अनेक ग्रन्थों के सहारे से हुई है तथापि उपासकदशांग सूत्र हरिभद्रीय आवश्यक एवं बारह व्रतों की चौपई को[1] मुख्य आधार रखा गया है। सामायिक सूत्र[2] तथा अहिंसा अणुव्रत आदि पुस्तकें[3] भी इस संकलन में काफी सहायक रही हैं।

यह क्यों ?

मैं साधुधर्म के विषय में चारित्रप्रकाश लिख रहा था। एक श्रावकजी ने उसे देख कर कहा—महाराज! श्रावकधर्म के विषय

नोट—१ श्री भिक्षु स्वामी कृत

२ उपाध्याय श्री अमरचन्दजी कृत

३ स्था० पू० श्री जवाहिरलालजी के व्याख्यानों के आधार से संकलित

में भी आप कुछ लिखिए, जिससे श्रावकवर्ग विशेष लाभ उठा सके। श्रावकजी की प्रार्थना ने हृदय में स्थान किया और चारित्रप्रकाश को सम्पन्न करके श्रावकधर्मप्रकाश लिखने लगा एवं सद्गुरुदेव की कृपा से सफलता मिली।

यद्यपि इस विषय को प्रकाशित करने वाले अनेक ग्रन्थ उपलब्ध हैं फिर भी मैं आशा करता हूँ कि सीधी सादी भाषा में लिखी हुई यह छोटी सी पुस्तक जनसाधारण के आदर्श श्रावक बनने में विशेष प्रेरक बनेगी और मेरा प्रयास सफल होगा, अस्तु।

वि० सं० २०२३, कार्तिक शुक्ला नवमी, सोमवार, बालोतरा (राजस्थान) — धनमुनि (प्रथम)

भूमिका

बालोतरा नगर के लिये यह परम सौभाग्य ही कहा जा सकता है, जहाँ गत छ वर्ष बाद ही परम श्रद्धास्पद प्रात स्मरणीय आचार्य प्रवर की अनुपम कृपा से तेरापथ शासन के सुप्रसिद्ध विद्वान एव सजग साधना के धनी मुनि श्री धनराजजी स्वामी (प्रथम) के द्वितीय चातुर्मास का इस वर्ष (सवत् २०२३) सुअवसर मिला। गत चातुर्मास की तरह ही समूचे चातुर्मास में एक अपूर्व आध्यात्मिक उल्लास व उत्साह बना रहा। जन हिताय विविध प्रवृत्तियों के उपरात मुनि श्री के स्वाध्याय का क्रम भी सतत चलता रहा व उसके फलस्वरूप इस चातुर्मास में मुनि श्री ने जैन साधुओं की सयम साधना के विशिष्ट एव विराट आचार प्रकार, नियम उपनियम, आचार विचार के सबध में शास्त्रीय एव परम्परा के विद्यमान आधारों का गहन सकलन कर एक सुव्यवस्थित आचार सहिता के रूप में 'चारित्र प्रकाश' ग्रथ की रचना सपन्न की और उसके पश्चात सरल सुबोध व सुगम भाषा में श्रावक जीवन से सबधित भगवद्वाणी व उत्तरवर्ती आचार्यों द्वारा प्रेरणाजन्य बनाए गये विधि विधान व आधारों का सकलन कर 'श्रावकधर्म प्रकाश" के रूप में दूसरे ग्रथ की रचना कर पूर्व पुस्तक के अत्यन्त आवश्यक पूरक के अभाव की पूर्ति की।

"चारित्र प्रकाश" का प्रकाशन इसके पूर्व हो चुका है व प्रस्तुत पुस्तक 'श्रावक धर्म प्रकाश' को पाठकों के हाथों में सौंपने का हमको सात्विक गर्व है यद्यपि मुनि श्री की लगनशीलता, कार्यशक्ति,

श्रमशील खोजपूर्ण अध्ययन व लोगों के जीवन परिष्कार की अपूर्व भावना ही इसमें मुख्य कारण है और इस विषय में मुनिश्री का आभार प्रकट करने के लिये जितने शब्द कहे या लिखे जाय, वे थोड़े ही होंगे। हृदय के भावों की असीमता सीमित शब्दों में बाँधी नहीं जा सकती। यह पुस्तक सरल भाषा में एक स्थान पर उपयोगी तत्त्व एकत्रित किये जाने के कारण जन जन के जीवन शुद्धि का क्रम स्थिर कर उसके मानस को जागृत करेगी, ऐसा मेरा विश्वास है।

प्रस्तुत पुस्तक को धारने व लिपिबद्ध करने में स्थानीय सभा के कार्यकर्ता श्री सोहनराज सालेचा, श्री मोहनराज फोगटिया, श्री मोहनलाल ओसवाल आदि ने जो समय व शक्ति दी है उसके लिये वे तो धन्यवाद के पात्र हैं ही पर मैं श्री लूणकरणजी, लाभचंदजी तिलोकचंदजी मोहनलालजी पुगलिया डूँगरगढ़ निवासी को भी प्रशंसा किये बिना नहीं रह सकता जिन्होंने अपने पूज्यमातुश्री के दिवंगत होने पर स्मृति रूप में इस पुस्तक के प्रकाशन का संपूर्ण व्यय वहन करने की स्वीकृति देकर अपने अर्थ का सदुपयोग किया है व समाज के लिए सत्साहित्य के प्रचार का मार्ग प्रशस्त किया है।

मैं पुन आशा करता हूं कि प्रस्तुत पुस्तक श्रावक के जीवन को आलोक प्रदान करेगी व अपने आप की सार्थकता सिद्ध करेगी।

दि० १० ४ ६७
चैत्रशुक्ला—१

मोहनराज कोठारी, एडवोकेट
उपाध्यक्ष, श्री जैन श्वे० ते० महासभा
कलकत्ता

प्रश्नोत्तरों की विषय सूची

पहला पुञ्ज (पृष्ठ १ से १२ तक)

दूसरा पुञ्ज (पृष्ठ १२ से २१ तक)

तीसरा पुञ्ज (पृष्ठ २१ से २६ तक)

चौथा पुञ्ज (पृष्ठ २६ से ४० तक)

पाँचवाँ पुञ्ज (पृष्ठ ४० से ५३ तक)

छठा पुष्प (पृष्ठ ५३ से ६२ तक)

सातवाँ पुष्प (पृष्ठ ६२ से ६७ तक)

आठवाँ पुष्प (पृष्ठ ६७ से ८६ तक)

९—मांस के विषय में जैन शास्त्रों का प्रमाण
१०—जैन तथा अन्य शास्त्रों द्वारा मद्यपान का निषेध। मद्यपान का व्यसन छूटना कठिन।
११—श्रावक की खान पान आदि क्रियाएँ अव्रत में
१२—कर्म सम्बन्धी उपभोग परिभोग व्रत में इंगालकम्मे आदि पंद्रह कर्मादान श्रावक के लिए त्यागने योग्य हैं। विशेषतया न त्याग सके तो मर्यादा अवश्य ही करनी चाहिए।

नवाँ पुष्प (पृष्ठ ८७ से ९१ तक)

१—अनर्थ दण्ड विरमण व्रत
२—अनर्थ दण्ड के चार प्रकार अपध्यान चरित आदि प्रमादचरित में पांच प्रकार के प्रमाद का दिग्दर्शन (चार विकथाएँ)।
३—अनर्थ दण्ड व्रत के आठ आगार
४—पांच अतिचार—विशेष ध्यान देने योग्य

दसवाँ पुष्प (पृष्ठ ९१ से १०७ तक)

१—शिक्षाव्रत का रहस्य
२—सामायिक की अनेक व्युत्पत्तियाँ
३—सामायिक करने की विधि प्रतिज्ञा पाठ एवं उसका भावार्थ तथा एक मुहूर्त का काल
४—सामायिक लेने के बाद चउवीसत्थव करना चाहिए। उसके अन्तर्गत १८ लाख २४ हजार १२० मिच्छामिदुक्कड

ग्यारहवाँ पुञ्ज (पृष्ठ १०७ से ११२ तक)

बारहवाँ पुञ्ज (पृष्ठ ११३ से १२२ तक)

पन्द्रहवाँ पुञ्ज (पृष्ठ १३६ से १४६ तक)



पहला-पुञ्ज

(१) प्रश्न—श्रावक किसे कहते हैं ?

उत्तर—अक्षरों का अर्थ इस प्रकार है—(श्रा) जो सर्वज्ञ-भाषित तत्त्व में श्रद्धा रखता हो (व) सत्पात्रों में दान रूप बीज बोता हो तथा (क) कर्म रूप रजो को दूर करता हो वह श्रावक कहलाता है।[१] अथवा जो सर्वज्ञ भगवान् की वाणी को श्रद्धापूर्वक सुनता है उसे श्रावक कहते हैं। श्रमणों—साधुओं की उपासना—सेवा करने से श्रावक को श्रमणोपासक भी कहा गया है।[२]

(२) प्रश्न—क्या श्रावक जन्म से ही होते हैं या पीछे बनना पड़ता है?

उत्तर—शास्त्रों मे समणोवासए जाए अर्थात् वह श्रमणोपासक बना, ऐसा पाठ आया है, अतः श्रावक के योग्य गुण एवं व्रत धारण करने से श्रावक बनता है। यद्यपि व्यवहार में श्रावक का बेटा श्रावक कहलाता है, लेकिन वास्तव में वह श्रावक होता नहीं। हो भी कैसे सकता है। जबकि पढ़े बिना डाक्टर का बेटा डाक्टर नहीं होता मास्टर का बेटा मास्टर नहीं होता एवं आज के प्रजातन्त्र मे जनमत एवं योग्यता प्राप्त किये बिना राष्ट्रपति का बेटा भी राष्ट्रपति नहीं हो सकता ? अस्तु ! श्रावकों को श्रावकोचित गुण धारन चाहिए।

१—स्था०, ४१४ टीका।

२—उपासकदशा—दशाश्रुत, स्कंध—औपपातिक—भगवती आदि सूत्रों में।

(३) प्रश्न—श्रावकों में क्या-क्या गुण होते हैं ?

उत्तर—जैन आगमों के अनुसार श्रावक अल्प आरम्भ वाले, अल्प परिग्रह (आसक्ति) वाले, धर्म की भावना रखने वाले धर्म के पीछे चलने वाले धर्म को इष्ट मानने वाले, धर्म का प्रचार करने वाले धर्म के मर्म का अवलोकन करने वाले, धर्म का पालन करने वाले, धर्म में सदा प्रसन्नचित्त रहने वाले आजीविका करते समय भी धर्म को याद रखने वाले, सुशील, सुव्रती धर्म कार्य में आनन्द मानने वाले एवं साधु सज्जन होते हैं।[१]

वे जीव अजीव, पुण्य-पाप आदि नव तत्वों के जानकार होते हैं।

वे विकट वेला में भी देवों की सहायता नहीं चाहते एवं अपने व्रत नियम तथा निर्ग्रन्थ प्रवचन (वीतराग वाणी) में इतने सुदृढ़ होते हैं कि देव, असुर नाग ज्योतिष्क, यक्ष, राक्षस, किन्नर, किंपुरुष, गरुड़, महोरग एवं गन्धर्वादि भी उन्हें सत् श्रद्धा से विचलित नहीं कर सकते।

वे प्रभुवाणी में कभी शंका नहीं करते, अन्य मत की आकांक्षा नहीं करते और धर्म के फलों में सन्देह नहीं करते। उन्हें प्रभु वाणी का रहस्य प्राप्त हो गया है, उसे उन्होंने श्रद्धापूर्वक ग्रहण किया है। शंका के स्थलों को गुरुओं से पूछ कर निर्णय को हृदय में रमाया है तथा उनके हाड़ एवं हाड़ की मज्जाएँ धर्म के रंग में रंगी हुई हैं।

वे निर्ग्रन्थ प्रवचन का ही अर्थ (सारभूत) एवं परमार्थ मानते हैं, शेष सांसारिक कार्यों को अनर्थ अर्थात् आत्मा के लिए अहित—

१—औपपातिक० प्रश्न २० तथा सूत्र० अ० १८।

अकल्याणकारी समझते हैं। उनके घर के दरवाजों की अगलाएँ हमेशा ऊंची रहती हैं अर्थात् घर के दरवाजे खुले रख कर वे साधु साध्वियों की भावना भाते हैं।

चाहे राजा के अन्त पुर में भी चले जाए फिर भी उनके प्रति किसी प्रकार की आशंका एव अप्रतीति नहीं होती।

वे शीलव्रत, गुणव्रत, विरमणव्रत प्रत्याख्यान आदि का सम्यक् प्रकार से पालन करते हुए अष्टमी, चतुर्दशी, पूर्णिमा एव अमावस्या को पौषधोपवास करके विधि पूर्वक धर्म की आराधना करते हैं।

वे श्रमण निग्रन्थों को निर्दोष, प्रासुक एव एषणीय आहार-पानी आदि चौदह प्रकार का दान देते हुए एव ग्रहण किए हुए तप-जप आदि धर्म ध्यान में आत्मा को लीन बनाये रखते हैं।[1]

पहला पुञ्ज

प्रकारान्तर से श्रावक के छः गुण माने गये हैं[1]

(१) श्रावक व्रतों का भली प्रकार अनुष्ठान करते हैं। व्रतों का अनुष्ठान चार प्रकार से होता है—

(क) विनय और बहुमानपूर्वक व्रतों को सुनना।

(ख) व्रतों के भागे, भेद एव अतिचारों को साङ्गोपाङ्ग यथार्थ रूप से जानना।

१—औपपातिक, प्रश्न २० तथा भगवती० २।५

१—धर्मरत्नप्रकरण गाथा ३३

(ग) गुरु के समीप कुछ काल अथवा सदा के लिये व्रतों को अंगीकार करना।

(घ) ग्रहण किये हुए व्रतों को सम्यक् प्रकार से पालना।

(२) श्रावक शीलवान् होते हैं। शील (आचार) छ प्रकार से पाला जाता है—

(क) जहाँ बहुत से शीलवान बहुश्रुत साधर्मिक लोग एकत्रित हों वहां आवागमन रखना।

(ख) बिना काम दूसरों के घर न जाना।

(ग) चमकीला भडकीला वस्त्र न रखते हुए वेश में सादापन रखना।

(घ) विकार उत्पन्न करने वाले वचन न बोलना।

(ङ) बालक्रीडा अर्थात् जुआ आदि कुव्यसनों का त्याग करना।

(च) मधुर नीति से अर्थात् शान्तिमय मीठे वचनों से काम निकालना, कठोर वचन न बोलना।

(३) श्रावक गुणवान् होते हैं—पाँच विशेष गुण श्रावकों के लिये जरूरी माने गये हैं—

(क) वाचना पृच्छना परिवर्तना अनुप्रेक्षा और धर्म कथा रूप पाँच प्रकार का स्वाध्याय करना।

(ख) तप नियम वन्दनादि अनुष्ठानों मे तत्पर रहना।

(ग) विनयवान् होना।

(घ) दुराग्रह अर्थात् हठ न करना।

(ङ) जिन वचनों मे रुचि रखना।

(४) श्रावक ऋजु व्यवहारी होते है यानि निष्कपट होकर सरलता से व्यवहार करते हैं।

(५) श्रावक गुरु की सेवा शुश्रूषा करने वाले होते हैं।

(६) श्रावक प्रवचन अर्थात् शास्त्रों के ज्ञान में प्रवीण होते है।

(४) प्रश्न—श्रावक कितने प्रकार के होते है ?

उत्तर—श्रावक चार प्रकार के माने गये है—नाम श्रावक, स्थापना श्रावक, द्रव्य-श्रावक और भाव-श्रावक।

किसी व्यक्ति का नाम ही श्रावक हो वह नामश्रावक है। श्रावक की मूर्ति एव तस्वीर स्थापनाश्रावक है। श्रावक के कुल मे पैदा होकर श्रावक के गुणों व व्रतों से जो हीन है अथवा निकट भविष्य में जो श्रावक बनने वाला है वह द्रव्यश्रावक है तथा श्रावक के गुणों-व्रतों से सम्पन्न व्यक्ति भावश्रावक है।

भावश्रावक तीन प्रकार के होते हैं[1] दर्शनश्रावक व्रतीश्रावक और उत्तरगुणश्रावक।

(१) शुद्ध सम्यक्त्व धार कर भी जो व्रत बिलकुल नहीं धार सकते वे श्रीकृष्ण एव श्रेणिकादिवत दर्शनश्रावक (सम्यक्त्वी [illegible]) कहलाते हैं। ये चौथे अविरति—सम्यग्दृष्टि गुण स्थान मे [illegible] है।

(२) जो केवल पाँच अणुव्रतों को ग्रहण करते हैं वे [illegible] होते हैं।

(३) जो पाच अणुव्रत तीन गुणव्रत और चार [illegible] ऐसे [illegible] व्रतों के धारक है वे आनन्द-कामदेवादिवत् [illegible]

१—श्राद्धविधि, गाथा ४।

जाते हैं। दूसरे तीसरे प्रकार के श्रावकों में गुणस्थान पाँचवाँ होता है।

निशीथ उ० ११ चूर्णि में श्रावकों के दो भेद भी किये हैं—व्रती और अव्रती। व्रती अर्थात् बारह व्रतधारी-श्रावक एवं अव्रती अर्थात् सम्यक्त्वी श्रावक।

(५) प्रश्न—श्रावक बनने वाले को सबसे पहले क्या करना चाहिए ?

उत्तर—सर्वप्रथम उन्हें शुद्ध सम्यक्त्व को प्राप्त करना चाहिये। क्योंकि सम्यक्त्व के बिना चारित्र-व्रत नहीं होता।[१] यदि व्यवहार से कर लिया जाता है तो द्रव्यव्रत ही होता है भावव्रत नहीं होता।

द्रव्यव्रत और भावव्रत में राई मेरु जितना अन्तर माना गया है। जैसे धोती पायजामा आदि पहनने पर ही ऊपर की पोशाक शोभा देती है एवं अंकों के ऊपर ही बिंदियों का महत्व बढ़ता है उसी प्रकार सम्यक्त्व होने पर ही अणुव्रत, गुणव्रत एवं शिक्षाव्रत विशेष लाभ देते हैं।

(६) प्रश्न—सम्यक्त्व की प्राप्ति कैसे होती है ?

उत्तर—सच्चे देव सच्चे गुरु एवं सच्चे धर्म को श्रद्धापूर्वक मानने से सम्यक्त्व की प्राप्ति होती है। सम्यक्त्व धारण करने वाला व्यक्ति प्रतिज्ञा करता है कि मैं अरिहन्त भगवान् को देव मानूँगा शुद्ध पाँच महाव्रतधारी साधु को गुरु मानूँगा एवं अरिहन्त भगवान के बताए हुए तत्त्व को धर्म मानूँगा। गुणहीन देव गुरु धर्म को धर्मबुद्धि से वन्दना नमस्कार नहीं करूँगा।

नोट—१ उत्तरा, अ० २८ २९।

देव-गुरु धर्म को समझने के लिये नव-पदार्थ षड्द्रव्य का ज्ञान करना परम आवश्यक है। यह ज्ञान पच्चीस बोल आदि थोकड़ों को याद करने से सहज रूप मे मिल सकता है।

तात्विक ज्ञान होने पर भी सम्यक्त्व प्राप्ति के लिये अनन्तानुबन्धि (तीव्र) क्रोध मान-माया-लोभ को त्यागना बहुत जरूरी है। है। जब तक तीव्र क्रोधादि हृदय मे रहेंगे सम्यक्त्व नहीं मिल सकेगा।

७ प्रश्न—सम्यक्त्व की रक्षा के लिये श्रावक को क्या करना चाहिए?

उत्तर—अतिचारों से बचना चाहिये। अतिचारों का रहस्य इस प्रकार है [१]—

निषिद्ध काय को करने का विचार करना अतिक्रम है। कार्य-पूर्ति यानि व्रतभग के लिये साधन जुटाना व्यतिक्रम है। व्रतभग की पूरी तयारी है किन्तु जब तक व्रतभग नही तब तक अतिचार है अथवा व्रत की अपेक्षा रखते हुये कुछ अश मे व्रत को भग करना अतिचार है तथा व्रत की अपेक्षा न रखते हुए सकल्पपूर्वक व्रत भग करना अनाचार है। इस प्रकार अतिक्रम, व्यतिक्रम, अतिचार-अनाचार – ये चारों व्रत की मर्यादा को भग करने के प्रकार हैं।

शास्त्र मे जो अतिचारों का वर्णन है, वह व्रतभग का मध्यम प्रकार है। अतिचार से पूर्ववर्ती अतिक्रम, व्यतिक्रम और उत्तरवर्ती अनाचार भी ग्रहण किये जाते हैं। वे भी श्रावक के लिये त्याज्य हैं। यह बात भी ध्यान में रखनी चाहिए कि सकल्पपूर्वक व्रतों को बिना

१—जैनसिद्धान्त बोल सग्रह, भाग १, बोल ३१२।

अपेक्षा किये अतिचारों का सेवन किया जाय तो वह वास्तव में अनाचार सेवन ही है एवं व्रतभंग का कारण है।

८ प्रश्न—सम्यक्त्व के कितने और कौन कौन से अतिचार हैं ?

उत्तर—पांच अतिचार हैं—१ शङ्का, २ काङ्क्षा ३ विचिकित्सा, ४ पर पाखण्ड प्रशंसा, ५ परपाखण्ड संस्तव।[1]

१ अरिहन्त भगवान् के बताए हुए जीव अजीव आदि तत्त्वों में संदेह करना शङ्का है। जैसे—पानी की एक बून्द में असंख्य जीव एवं निगोद के एक सूक्ष्म शरीर में अनन्त जीव कैसे समा सकते हैं ? धर्मास्तिकाय आदि द्रव्य अरूपी—निराकार हैं फिर भी जीव पुद्गल की गति में सहायक कैसे हो सकते हैं ? तथा बनाए बिना जगत् कैसे बन सकता है ? आदि आदि विचार करना।

(२) बाह्य आडम्बर देख कर अन्य दर्शनों मतों की अभिलाषा करना काङ्क्षा है।

(३) युक्ति तथा आगम संगत धर्मक्रिया के फलों में संदेह करना विचिकित्सा है। जैसे—नीरस तप आदि क्रिया का भविष्य में फल मिलेगा या नहीं? शङ्का तत्त्वों के विषय में होती है और विचिकित्सा क्रियाफल के विषय में होती है। यही दोनों में अन्तर है।

(४) अन्यमतावलम्बियों की प्रशंसा करना परपाखण्डप्रशंसा है। (जिम्मेदार श्रावक के मुंह से प्रशंसा सुनकर अनेक भोले भाले अन्य मत की तरफ आकृष्ट हो जाते हैं।)

१—उपासकदशा, अ० १।

लेते थे एवं देवों द्वारा घोर कष्ट देने पर भी अपने सच्चे धर्म से विचलित नहीं होते थे। अर्हन्नक तथा कामदेव की कथाएं इस प्रकार है—

अर्हन्नक श्रावक[1] चम्पानगरी में अर्हन्नक आदि अनेक श्रावक रहते थे। एकदा अर्हन्नक अनेक व्यापारियों के साथ जहाज मे माल भरकर समुद्र के मार्ग से व्यापारार्थ विदेश जा रहा था। जहाज समुद्र के बीच में था उस समय अचानक भीषण तूफान आया, मेघ गजने लगे तथा बिजलियां चमकने लगीं। कुछ ही क्षणों पश्चात् वहाँ हाथ में तलवार लिए एक देव पिशाच के रूप में प्रकट होकर कहने लगा—अर्हन्नक! या तो अपने धर्म को छोड़ दे अन्यथा इस जहाज को आकाश में ले जाकर समुद्र में पटक दूंगा। देव की बात सुन कर जहाज में बैठे हुए दूसरे लोग घबरा कर इन्द्र वैश्रवण, दुर्गा आदि देवों की विभिन्न प्रकार से मान्यताएँ करने लगे किन्तु अर्हन्नक बिल्कुल विचलित न हुआ और सागारी संथारा करके धर्म ध्यान में लीन हो गया। देव ने बार-बार धमकियाँ दी। फिर भी श्रावक अडोल रहा। तब वह अपनी दो अंगुलियों पर जहाज को उठाकर आकाश में बहुत ऊँचा ले गया एवं कहने लगा—छोड़ दे धर्म को वरना अब जहाज को समुद्र में पटकता हूँ।

मरणान्तक कष्ट था लेकिन अर्हन्नक के हृदय में तनिक भी कमजोरी न आई। धर्म में अद्भुत दृढ़ता देख कर देवता प्रसन्न हुआ एवं अपना दिव्य रूप धार कर बोला—श्रावक! इन्द्र ने तुम्हारे सम्यग् दर्शन की प्रशंसा की थी, मैंने परीक्षा करने के लिए तुम्हें

नोट १ ज्ञाता, अ० ८ के आधार से।

यह कष्ट दिया लेकिन धन्य है तुम्हारी धार्मिक दृढ़ता। वास्तव मे तुम प्रशंसा के पात्र ही हो। मैं तुम से पुन पुन क्षमायाचना करता हू—ऐसे कह कर अर्हन्नक के चरणों में एक दिव्य कुण्डलों की जोडी रख कर वह देवता अपने स्थान चला गया।

कामदेव श्रावक—चम्पानगरी में कामदेव गाथापति रहता था। उसके पास १८ करोड सोनैये एव छ गोकुल थे। सेठानी का नाम भद्रा था। भगवान् महावीर पधारे तब उसने व्रत धारण किए।

एक दिन वह पौषध शाला मे पौषध करके धर्म ध्यान में लीन हो रहा था। आधी रात के समय वहाँ एक भयंकर पिशाच रूप देव आकर बोला—कामदेव! यद्यपि तुझे अपने व्रत नियम से विचलित होना नहीं कल्पता किन्तु मैं तुझे आज अवश्य ही विचलित करूगा। यदि तू धर्म को न छोडेगा तो इस तलवार से तेरे टुकडे-टुकडे कर डालूगा। तीन बार इस तरह धमकी देने पर भी श्रावक अडोल रहा। गुस्से मे होकर पिशाच ने उसे काटना शुरू किया। घोर वेदना हुई, किंतु समभाव से सहन की। देव मदोन्मत्त हाथी बना, कामदेव को अपनी सूड से आकाश मे उछाला। गिरते समय अपने तीखे दाँतों पर झेला एव जमीन पर पटक कर तीन बार रौंदा। असह्य पीडा हुई किंतु श्रावक का एक रोम भी न चला।

फिर देव ने महाकाय सर्प का रूप बनाकर कामदेव की गर्दन मे तीन आँटे डाल कर छाती मे जोर से डंक मारा। इतने पर भी वह अपने धर्म मे सुदृढ़ रहा। उसकी भावना मे धर्म के प्रति तनिक भी उदासी न आई। देव प्रसन्न हुआ एव असली दिव्य रूप से प्रकट

होकर कहने लगा—कामदेव ! तुम धन्य हो कृत पुण्य हो एवं तुम्हारा जन्म सफल है। शक्रेन्द्र ने तुम्हारी धर्म श्रद्धा की प्रशंसा की। विश्वास न होने पर मैंने परीक्षार्थ तुम्हें घोर कष्ट दिया। उसके लिए मैं तुमसे पुनः पुनः क्षमायाचना करता हूँ—ऐसे कह कर वह देवता स्वस्थान गया।

अचानक भगवान् पधारे। कामदेव दर्शनार्थ गया। प्रभु ने साधु साध्वियों की सभा में उसकी धर्म दृढ़ता की भूरि भूरि प्रशंसा की। आनन्द श्रावकवत् बीस वर्ष तक श्रावक धर्म का पालन करके एक मास की संलेखना से मर कर अरुणाभ विमान में देवता हुआ। वहाँ से च्यव कर महाविदेह क्षेत्र में जन्म लेकर मुक्ति प्राप्त करेगा।[१]

दूसरा-पुंज

(१) प्रश्न—व्रतधारी श्रावकों का विवेचन कीजिये ?

उत्तर—व्रत का अर्थ त्याग, संकल्प अथवा प्रतिज्ञा है। व्रती श्रावक को स्थूल हिंसा आदि पापों का त्याग करना परमावश्यक है। त्याग किये बिना व्रती श्रावक नहीं बन सकता।

(२) प्रश्न—यदि मनुष्य हिंसा आदि करे ही नहीं, तो फिर उसको त्याग करने की क्या जरूरत है ?

उत्तर—त्याग को किवाड़ के समान माना गया है। किवाड़ बन्द किये बिना पाप रूपी चोर डाकुओं का आना बन्द नहीं होता।

१ उपासक दशा०, अ० २।

दूसरी बात यह है कि त्याग करने से व्यक्ति विश्वासपात्र बन जाता है। इसीलिए तो राष्ट्रपति प्रधानमन्त्री आदि पदों को ग्रहण करते समय चाहे कितने ही सच्चे एवं ईमानदार व्यक्ति क्यों न हों उन्हें तत्-तत् पद सम्बन्धी शपथ दिलाई जाती है।

(३) प्रश्न—आगे चलकर कदाच व्रत टूट जाये तो?

उत्तर—बन्धुओ! जैसे—व्यापार करने वाले के व्यापार में घाटा भी हो जाता है भोजन करने वालों के बदहजमी भी हो जाती है, आँख वालों के मोतियाबिन्द भी आ जाता है चलने वालों के ठोकर भी लग जाती है तथा रेल-मोटरों की सवारी करने वालों के एक्सीडेंट भी हो जाते हैं फिर भी लोग व्यापार आदि को नहीं छोड़ते किन्तु भविष्य में विशेष सावधानी रखने की कोशिश करते हैं। इसी प्रकार प्रमादवश कदाच व्रत टूट भी जायें तो प्रायश्चित्त द्वारा शुद्ध होकर भविष्य के लिये विशेष सजगता रखी जा सकती है।

कई लोग विशाल व्यापार एवं धन-सम्पत्ति का बहाना लेकर व्रत धारने में आना कानी करते हैं। उनके लिये ज्ञानियों का फरमान है कि जिनके करोड़ों का व्यापार एवं धन था उन आनन्द आदि श्रावकों ने व्रत धारे हैं। जो श्रेणिक मगधेश का प्रधानमन्त्री था, उस अभयकुमार ने व्रत ग्रहण किये हैं। विशाल गणराज्य के अध्यक्ष महाराजा चेटक (चेडा) एवं सिंधु सौवीर आदि सोलह देशों के स्वामी महाराज उदायन भी बारह व्रतधारी श्रावक बने हैं, तो फिर तुम्हारे पास कितना व्यापार एवं धन सम्पत्ति है तथा कौनसा

विशाल राज्य है ? बहानाबाजी छोड़कर जल्दी से जल्दी व्रत धारण करो एवं मनुष्य जन्म को सफल बनाओ।

(४) प्रश्न— क्या शास्त्रीय विधान के अनुसार श्रावकों को सभी व्रत धारण करने पड़ते हैं या अपनी इच्छा के अनुसार धारे जा सकते हैं ?

उत्तर—भगवान के दो पुत्र हैं—साधु और श्रावक। साधु बड़े और श्रावक नन्हे। जैसे—बड़े पुत्र को पिता बड़े से बड़ा कार्य करने को कह देता है, लेकिन नन्हे का उसकी इच्छा व शक्ति के अनुसार ही कहता है उसी प्रकार प्रभु ने साधुओं के लिये तो महाव्रतों का (जिनका पालन कठिन है) विधान किया एवं श्रावकों के लिये अणुव्रतों (यथाशक्ति लिये जाने वाले छोटे छोटे व्रतों) का उपदेश दिया है। इसीलिये श्रावकों के पच्चक्खाण लाड़ के पच्चक्खाण कहे जाते हैं। हां तो ! सार यही निकला कि श्रावक अपनी इच्छा के अनुसार व्रत पच्चक्खाण ले सकते हैं।

उपासकदशाग सूत्र में वर्णित आनन्दादि श्रावकों का इतिहास पढ़ने से भी यही बात मिलती है। वहाँ किसी श्रावक ने तीन करोड़ स्वर्णमुद्रा रखी है, किसी ने बारह एवं चौबीस करोड़। किसी ने दस हजार गायें रखी हैं एवं किसी ने चालीस अथवा साठ हजार।

वास्तव में श्रावक जितना त्याग करता है वह व्रत है—धर्म है और जितना आगार रखता है वह अव्रत है—अधर्म है। इसी अपेक्षा

से श्रावक को व्रताव्रती[1] धर्माधर्मी[2] संयतासंयती[3] एवं पच्चक्खाणा-पच्चक्खाणी[4] कहा है।

(५) प्रश्न—व्रत कितने होते हैं ?

उत्तर—बारह माने गये हैं—पाँच अणुव्रत, तीन गुणव्रत और चार शिक्षाव्रत[5]। अणुव्रतों में पहला अहिंसा अणुव्रत है।

(६) प्रश्न—हिंसा अहिंसा का रहस्य समझाइये ?

उत्तर—प्रमत्तयोग से अर्थात् अज्ञान मिथ्याज्ञान, द्वेष एवं प्रमाद मय चेष्टाओं द्वारा जीवों को मारना हिंसा है[6] एवं हिंसा का तीन करण, तीन योग से त्याग करना अहिंसा है। हिंसा चण्ड है, रुद्र है क्षुद्र है अनार्य है, निर्घृण है[7]—अहित करने वाली है अबोध करने वाली है कर्मों की गांठ है, मृत्यु है एवं नरक है।[8] अहिंसा त्रस स्थावर सभी जीवों का कल्याण करने वाली है एवं भव्य जीवों को संकट में शरण देने वाली है।[9] जैसे सभी नदियाँ समुद्र में एक एक करके मिलती हैं उसी प्रकार सभी धर्म अहिंसा-धर्म में समा जाते हैं।[10] भाव यह है कि दूसरे सभी धर्म नदियों के समान हैं एवं अहिंसा धर्म समुद्र के समान है। साधु अहिंसा धर्म का सर्वथा पालन करते हैं और श्रावक उसे यथाशक्ति ग्रहण करते हैं।

---

(१) पचांशक-टीका, विवरण ६ (२) स्था०, ३।४ (३) स्था० ४।४।
(४) भगवती, ६।४ (५) आवश्यक प्र० १।
(६) तत्वार्थाधिगम, ७।८ (७) प्रश्नव्याकरण १।
(८) आचा०, १।२। (९) प्रश्न व्याकरण ६। (१०) सम्बोधसत्तरी ६।

(७) प्रश्न—अहिंसा अणुव्रत में श्रावक क्या त्याग करता है ?

उत्तर—निरपराध त्रस जीवों की संकल्पपूर्वक हिंसा करने का त्याग करता है।[१]

जीव दो प्रकार के होते हैं—त्रस और स्थावर।

द्वीन्द्रिय, त्रीन्द्रिय चतुरिन्द्रिय एवं पंचेन्द्रिय जीव त्रस कहलाते हैं और एकेन्द्रिय जीव (पृथ्वीकाय अप्काय तेजस्काय वायुकाय एवं वनस्पतिकाय स्थावर माने जाते हैं।)

हिंसा दो प्रकार की होती है—संकल्पजा और आरम्भजा। संकल्प से अर्थात् मारने की नीति से जीवों को मारना संकल्पजा हिंसा है एवं अन्य आरम्भ करते समय अन्य जीवों का मर जाना आरम्भजा हिंसा है। जैसे पृथ्वी खोदने, हल चलाने मकान बनवाने आग सुलगाते, वनस्पति का छेदन भेदन करते सड़े हुए अनाज को साफ करते, गाड़ी घोड़ा रेल मोटर आदि की सवारी करते स्वास्थ्य रक्षार्थ विरेचन आदि लेते एवं टट्टी नाली आदि को साफ करते, मारने की भावना न होने पर भी कृमि, चींटी मक्खी घुन टिड्डी साँप आदि जीव मर जाते हैं।

गृहस्थ होने के कारण श्रावक त्रस जीवों की आरम्भजा हिंसा नहीं छोड़ सकता केवल संकल्पजा हिंसा छोड़ता है। वह भी निरपराध प्राणी की अपेक्षा से छोड़ता है। यदि उस पर कोई आक्रमण करे या उसका कुछ बिगाड़ करना चाहे तो उसे संकल्पपूर्वक भी मार डालता है। क्योंकि वह उसका अपराधी बन जाता है एवं उसने

(१) श्रावकावश्यक।

निरपराध प्राणी को ही मारने का संकल्प किया है। इसी आधार पर महाराज चेटक ने बारह व्रत धारी श्रावक होते हुये भी संग्राम में कालो आदि दस राजकुमारों को मारा था।[1]

(८) प्रश्न—चाहे परिस्थितिवश आत्मरक्षा एवं देश आदि की रक्षा के लिये श्रावक को युद्ध भी करना पड़े लेकिन आम तौर पर उसका खान-पान आदि कैसा होना चाहिये?

उत्तर—संकल्पपूर्वक त्रस जीवों की हिंसा का त्याग करने वाले श्रावक को मांस अण्डा नहीं खाना चाहिये मदिरा पान नहीं करना चाहिये, मांसादिमिश्रित औषधियों से बचना चाहिए, रात्रि में भोजन न करना चाहिये, बिना छाना पानी न पीना चाहिये भोजन को जूठा न छोड़ना चाहिये, देखे बिना छाणा-लकड़ी आदि को न जलाना चाहिए रात्रि को खाना न पकाना चाहिये व झाड़ू न लगाना चाहिये। आटा आदि जिन खाद्य वस्तुओं में जीवों की उत्पत्ति विशेष होती हो उनका अधिक संग्रह न करना चाहिये एवं जहाँ तक हो सके त्रस जीवों की हिंसा से बचने का उपाय करना चाहिये।

(९) प्रश्न—क्या श्रावक को स्थावर जीवों की हिंसा का त्याग करना जरूरी नहीं है?

उत्तर—नहीं क्यों? यथाशक्ति अवश्य त्याग करना चाहिए। यद्यपि वह साधुओं की तरह समूची स्थावर हिंसा नहीं छोड़ सकता, फिर भी कुछ न कुछ तो छोड़ ही सकता है। जैसे—

पृथ्वीकाय की हिंसा से बचने के लिए—मर्यादित संख्या से

१—भगवती ७।९, तथा निरयावलिका सूत्र।

अधिक नये मकान दुकान कुण्ड कुआं, तालाब आदि नहीं बनाऊंगा। इतने एकड से अधिक खेती नहीं करूंगा।

अप्काय की हिंसा से बचने के लिए—यन्त्रादि द्वारा निकाल कर पानी नहीं बेचूंगा। होली आदि पर्व पर पानी नहीं उछालूंगा व कच्चा पानी नहीं पीऊंगा।

तेजस्काय की हिंसा से बचने के लिए—प्रतिदिन इतनी सख्या से अधिक चूल्हा भट्टी, लालटेन बिजली-बत्ती आदि नहीं जलाऊंगा। विवाहोत्सव एवं दीवाली आदि पर्व पर आतिशबाजी न छोड़ूंगा, होली न जलाऊंगा। बीडी, सिगरेट चिलम हुक्का आदि न पीऊंगा।

वायुकाय की हिंसा से बचने के लिए—इतनी सख्या से अधिक पखे काम मे न लूंगा व घर मे न लाऊंगा। अमुक अमुक महीनों में पखों की हवा न लूंगा। अमुक सख्या उपरान्त टेलीफोन रेडियो आदि न बसाऊंगा। पतग न उडाऊंगा एव बाजा न बजाऊंगा। साधुओं से खुले मुँह बात न करूंगा।

वनस्पतिकाय की हिंसा से बचने के लिए—अपनी काम में न आने वाले वृक्ष को जड से न काटूंगा। बेचने के लिए अनाज आदि न पीसूंगा, फलों फूलों का रस न निकालूंगा, तिल-सरसों-मूंगफली आदि को न पेलूंगा तथा घर खर्च के लिए मर्यादा उपरान्त वनस्पति का छेदन भेदन न करूंगा।

उपर्युक्त विधि से त्याग करने पर स्थावर जीवों की हिंसा से काफी बचा जा सकता है।

१० प्रश्न—अहिंसा अणुव्रत के अतिचार समझाइये ?

उत्तर—पाच अतिचार माने गये गये हैं—१ बन्ध २ वध ३ छविच्छेद ४ अतिभार ५ भक्तपान विच्छेद[1]।

बन्ध—त्रसजीवों को रस्सी आदि से बांधना बन्ध है। वह दो प्रकार का है—द्विपदबंध और चतुष्पद बंध।

मनुष्य-पक्षी आदि को बांधना द्विपदबन्ध है एवं गाय भैंस आदि चार पैरों वाले जीवों को बांधना चतुष्पद-बन्ध है। एक एक के पुनः दो-दो भेद हैं—अर्थबन्ध और अनर्थबन्ध। प्रयोजनवश बांधना अर्थबन्ध है, और निष्प्रयोजन बांधना अनर्थबन्ध है। अनर्थबन्ध अतिचार है।

अर्थबन्ध भी दो प्रकार का होता है—सापेक्ष और निरपेक्ष। सुगमता से खोला जा सके एवं जिसे बांधा जा रहा है वह विशेष कष्ट न पाये ऐसी अपेक्षा रखकर बांधना सापेक्षबन्ध है तथा निर्दयता पूर्वक गाढ़-बन्धन से बांधना निरपेक्षबन्ध है—यह अतिचार है। आवश्यकतावश पशुओं को तथा शिक्षा देने के लिए (दास-दासी चोर एवं अविनीत पुत्रादि) मनुष्यों को भी कदाचित् बांधना पड़े तो श्रावक को निरपेक्ष न बांधना चाहिए।

(२) वध—चाबुक आदि से पीटना वध है। इसके भी पूर्ववत् भेद हैं। अनर्थ एवं निरपेक्ष पीटना अतिचार है। मनुष्यों और पशुओं को सुधारने की भावना से पीटते समय भी श्रावक को यह ध्यान रखना

१—उपासकदशा अ० १

जरूरी है कि कही मम स्थान मे चोट लग कर नुकसान न हो जाय ।

(३) छविच्छेद —बिना कारण निरपेक्षता से जीवों के हाथ-पैर नाक कान आदि का छेदन करना छविच्छेद अतिचार है, किन्तु रोग मिटाने की भावना से आपरेशन आदि करना या दाग (डाम) लगाना अतिचार नही कहलाता ।

(४) अतिभार—मनुष्यों एवं पशुओं पर स्वार्थवश एवं निर्दयता से बोझा लादना अतिभार-अतिचार है । श्रावक को ऊँट घोडा आदि से भाडा कमाने की आजीविका न करनी चाहिए । कारणवश करनी ही पडे तो तत् तत् स्थानीय नियम (जैसे ऊँट पर ५ ६ मन, ऊँटगाडी मे ४ ५ सवारी तागा या घोडागाडी मे ३ ४ सवारी, मनुष्यों पर २ ३ मन एव मनुष्यवाही रिक्शा पर २ सवारी) से अधिक बोझा न लादना चाहिए तथा तागा रिक्शा आदि मे पूरी सवारियां हो गई हो तो असवारी श्रावक को उस पर न चढना चाहिए । इसके सिवा पशुओं अथवा मनुष्यों द्वारा मर्यादित समय (८ १० घंटा) से अधिक श्रम लेना भी इसी अतिचार मे समझना चाहिये ।

(५) भक्तपान-विच्छेद—बिना कारण अथवा मारने की भावना से अपने आश्रित मनुष्यों व पशुओं के खान पान मे अन्तराय देना अर्थात् उन्हे भूखे मारना भक्तपानविच्छेद अतिचार है । (दूध न देने से गायों भैसों को क्रुद्ध होकर चारा आदि न डालना तथा पुत्र-पुत्री व नौकर चाकर से कुछ गलती हो जाने पर उन्हे रोटी पानी न देना भी इसी अतिचार म है । किन्तु रोगादि मिटाने की भावना से रोगी

का यदि मनचाही चीज (जिसमें उसका नुकसान हो) न दी जाय तो वह अतिचार नहीं है तथा शिक्षा देने के लिए कुछ समय आहार पानी न देना एवं न देने की धमकी दिखाना भी इसी रूप में मानना चाहिए।

(११) प्रश्न—पहला व्रत कितने करण-कितने योग से लिया जाता है?

उत्तर—सामान्यतया दो करण तीन योग से लिया जाता है। तात्पर्य यह है कि श्रावक स्थूल-हिंसा १ मन से नहीं करता २ मन से नहीं करवाता ३ वचन से नहीं करता ४ वचन से नहीं करवाता ५ काया से नहीं करता ६ काया से नहीं करवाता—ये छः कोटि पच्चक्खाण कहलाते हैं। गृहस्थ होने से वह अनुमोदना का त्याग नहीं कर सकता।

तीसरा पुञ्ज

(१) प्रश्न—दूसरा अणुव्रत समझाइये?

उत्तर—दूसरा सत्य अणुव्रत है। इसमें श्रावक स्थूल असत्य का दो करण-तीन योग से त्याग करता है।

(२) प्रश्न—सत्य किसे कहते हैं?

उत्तर—सत्पुरुषों के लिए जो हितकारी है उसे सत्य कहते हैं। इसके चार रूप हैं[1]—१ काया की सरलता। २ भाषा की सरलता

१—स्था ४।१

३ भावों की सरलता ४ अपनी करनी में समानता। जिस किसी भी क्रिया में छल-कपट प्रविष्ट हो जाता है, फिर वहाँ सत्य नहीं रह सकता।

जैसे तेज के बिना सूर्य, शीतल प्रकाश के बिना चन्द्रमा, स्निग्धता के बिना दूध घी, भूख मिटाने की शक्ति से शून्य अनाज, प्यास न बुझा सकने वाला पानी और प्राणविहीन सुन्दर शरीर ये सभी निकम्मे हैं, उसी प्रकार सत्य के बिना मनुष्य भी कोई काम का नहीं। सत्य ही मनुष्यता है। मनुष्यता ही क्या, शास्त्र में सत्य को भगवान् भी कहा है[१]।

(३) प्रश्न—असत्य का क्या अर्थ है?

उत्तर—अयथार्थ भाव को प्रकट करना असत्य है[२]। यह लोगों में अविश्वास का कारण है[१]। भय दुःख अपयश तथा वैर का करने वाला है[४]। असत्य क्रोध-लोभ भय आदि के निमित्त से प्रकट होता है। साधु इसका सर्वथा तीन करण-तीन योग से त्याग करते हैं, लेकिन श्रावक अपनी दुर्बलता के कारण केवल बड़े झूठ का त्याग करता है।

(४) प्रश्न—बड़ा झूठ कितने प्रकार का है?

उत्तर—पाँच प्रकार का माना गया है[१]—१ कन्यालीक २ गवालीक ३ भूम्यलीक ४ न्यासापहार ५ कूटसाक्षिज।

१—प्रश्नव्याकरण ७। ३—दशवै० ७।१३
२—जैन सिद्धान्त दीपिका ७७७। ४—प्रश्न व्याकरण २
१—स्था० ५।१।३८६

१ कन्यालीक—कन्या से सम्बन्धित झूठ बोलना कन्यालीक कहलाता है। इसका त्याग श्रावक चार प्रकार से करता है।

द्रव्य से—रूपवती पूर्णाङ्गी एवं उच्चजाति की कन्या को स्वार्थ या द्वेषवश कुरूप, अङ्गहीन एवं नीच जाति की कहकर जुड़ते हुए वैवाहिक-सम्बन्ध में धक्का नहीं लगाता तथा उक्त दोषवाली कन्या को अच्छी बता कर किसी के साथ सगपन नहीं करवाता।

क्षेत्र से—दूसरे गांव देश की कन्या को किसी दूसरे गांव-देश की बता कर ठगाई नहीं करता।

काल से—कन्या की आयु के सम्बन्ध में झूठ नहीं बोलता अर्थात् स्वार्थादिवश उसे कम ज्यादा आयु की नहीं बताता।

भाव से—कन्या के गुणों-दुगुणों के विषय में असत्य नहीं बोलता यानि चतुर तथा दुर्विनीत को विनीत एवं विनीत को दुर्विनीत नहीं कहता।

यद्यपि श्रावक दूसरों की कन्या के विषय में तो झूठ नहीं बोलता लेकिन वह कहता है कि मेरे ही घर में या परिवार में कोई काण कसर वाली कन्या उत्पन्न हो जायगी तो मुझे झूठ बोल कर भी उसको रास्ते लगाना ही होगा क्योंकि कुंवारी-कन्या को जीवन भर घर में रखना असम्भव है। कन्या के नाम से कहा हुआ यह झूठ का त्याग मनुष्य मात्र के विषय में समझ लेना चाहिए अर्थात् वर के विषय में भी बूढ़े को जवान, रोगी को निरोग आदि कह कर किसी का वैवाहिक सम्बन्ध नहीं जोड़ना चाहिये क्योंकि अनुचित जोड़ा जुड़ने से वर-वधू जीवन भर के लिए दुःखी हो जाते हैं।

२ गवालीक—गाय भैंस आदि पशुओं के सम्बन्ध में असत्य बोलना गवालीक है[१]।

श्रावक गाय भैंस आदि के विषय में द्रव्य क्षेत्र काल भाव से असत्य नहीं बोलता। जैसे—अच्छी गाय भैंस आदि को बुरी एवं बुरी को अच्छी नहीं कहता अधिक दूध वाली को उसट (कम दूध वाली) एवं उसट को अधिक दूध वाली नहीं बताता तथा मारने वाली को सूधी एवं सूधी को मारने वाली कह कर किसी को नहीं ठगता। इसी प्रकार ऊंट घोड़ा आदि के विषय में भी झूठ नहीं बोलता।

३ भूम्यलीक—भूमि खेत मकान दूकान कुआं तालाब एवं बाग आदि के विषय में झूठ बोलना भूम्यलीक है। श्रावक स्वार्थ या लोभवश उपजाऊ भूमि को ऊसर एवं ऊसर को उपजाऊ नहीं कहता। अच्छे मकान आदि को खराब, अशुभ या सनाग्रिस्त तथा खराब व उसके वहम वाले को अच्छा नहीं कहता। मौका न हो तो वह मौन रह जाता है, लेकिन इस प्रकार झूठ नहीं बोलता।

(४) न्यासापहार—विश्वास करके अमानत के रूप में रखी हुई वस्तु को स्वामी के मांगने पर नट जाना न्यासापहार है। यह बड़ा भारी विश्वासघात एवं जुल्म है, अतः श्रावक इसका त्याग करता है।

१—जैसे कन्या को मनुष्यमात्र की जननी होने से मुख्य मानकर शास्त्रकार ने उसके नाम से मनुष्य सम्बन्धी असत्य का निषेध किया है सम्भवतः उसी प्रकार यहाँ गाय को भी पशुओं में श्रेष्ठ समझकर उसके नाम से पशु सम्बन्धी असत्य का प्रतिषेध किया है।

(५) कूटसाक्षी—अपने या पराये लाभ के लिए तथा किसी को हानि पहुँचाने के लिए न्यायाधीश, पचायत सघ आदि के सामने असत्य भाषण करना कूटसाक्षी है। यह महानिन्दनीय एव घोर पाप माना गया है। मनुस्मृति ८।८२ में कहा गया है कि झूठी साक्षी देने वाला सौ जन्मों तक वरुण की फाँसी में बाधा जाता है।

यद्यपि आज के न्यायालयों में अधिकांश झूठी साक्षिया चलती है फिर भी श्रावक को इनसे बचना ही चाहिए। विकट परिस्थिति में भी यह त्याग तो उसे जरूर करना चाहिए कि जिससे सामने वाले का भारी नुकसान हो जाय अथवा घर नष्ट हो जाय ऐसी झूठी साक्षी मैं कभी नहीं दूगा।

(६) प्रश्न—दूसरे व्रत के अतिचार बतलाइये ?

उत्तर—पाँच अतिचार है[१]—१ सहसाभ्याख्यान २ रहोऽभ्याख्यान ३ स्वदारमन्त्रभेद ४ मृषोपदेश ५ कूटलेखकरण।

१ बिना विचारे असावधानी से किसी पर मिथ्या आरोप—झूठा कलक लगाना सहसाभ्याख्यान अतिचार है—जैसे यह चोर है, व्यभिचारी है असत्यवादी है आदि आदि कह देना। यदि जानते हुए इरादापूर्वक तीव्र सक्लेश से आरोप लगाया जाय तो वह अनाचार बन जाता है एव व्रत भंग हो जाता है। अभ्याख्यान का अर्थ झूठा कलक है।

(२) एकान्त मे सलाह करते हुए व्यक्तियों पर सन्देह करके झूठा आरोप लगाना रहोऽभ्याख्यान अतिचार है। जैसे-ये राजविरुद्ध मन्त्रणा

१—उपासक दशा० अ० १ तथा हरिभद्रीय आवश्यक अ० ६।

कर रहे हैं, य स्त्री पुरुष बदमाशी की बात कर रहे है अथवा ये मेरी निन्दा कर रहे हैं।

श्रावक को किसी पर इस प्रकार का मिथ्या-आरोप नही लगाना चाहिए। साधु पर आरोप लगाने से ही महासती सीता पर झूठा कलङ्क आया था एव उसे जङ्गल मे भटकना पड़ा था। किसी पर झूठा मामला करना भी एक प्रकार से मिथ्या आरोप ही है।

(३) स्व-स्त्री के साथ एकान्त मे हुई विश्वस्तमन्त्रणा (वार्तालाप) को दूसरे के आगे कहना स्वदारमन्त्रभेद है।

यद्यपि कहने वाला व्यक्ति स्त्री के साथ हुई सत्य वार्ता को ही प्रकट करता है, किन्तु गुप्त बात प्रकट हो जाने से लज्जा या सङ्कोचवश स्त्री कदाचित् आत्महत्या करले अथवा जिसके आगे उक्तमन्त्रणा प्रकाशित की गई है, उसे मार डाले। इस प्रकार अनर्थपरम्परा का कारण होने से गुप्तमन्त्रणा का प्रकाशन सत्य होते हुए भी श्रावक के लिये अतिचार माना गया है।

इसी प्रकार पुरुषों की गुप्त बात को प्रकट करना स्त्रियों के लिये भी अतिचार है। पुरुषों की अपेक्षा स्त्रियों के कोठे कम गम्भीर होते हैं, अत उन्हें इस विषय में विशेष सावधान रहना चाहिए।

(४) बिना विचारे असावधानी से या किसी बहाने से दूसरों को मिथ्या उपदेश देना मृषोपदेश अतिचार है। जैसे अमुक समय इस प्रकार झूठ बोलकर हमने अमुक व्यक्ति को हराया था एव काम

सिद्ध किया था, इस प्रकार कहने से सुनने वाले को झूठ बोलने की प्रेरणा मिलती है अत यह अतिचार है।

परपीड़ाकारी उपदेश भी मृषोपदेश ही है। जैसे चोरों को मारना चाहिये ऊँटों गदहों एवं पाड़ा को चलाना चाहिये अर्थात् इनसे भाड़ा कमाना चाहिये आदि आदि उपदेश देना।

कोई सलाह लेने आए उसे झूठी (उसके अहित की) सलाह देना भी इसी झूठ में माना गया है क्योंकि यह बहुत बड़ा विश्वास घात है। श्रावक को इसका पूरा पूरा ध्यान रखना चाहिये।

(५) कूट अर्थात् झूठा लेख लिखना कूटलेखकरण अतिचार है। इसके अनेक रूप हैं जैसे (१) झूठा खत (सौ देकर दो सौ) लिखाना (यह काम आसामियों का धन्धा करने वाले सेठ लोग अधिक करते हैं)।

(२) जाली (नकली) लेख-दस्तावेज मोहर एवं दूसरों के हस्ताक्षर बनाना (यह काम कोर्ट या पंचों के सामने अपनी सत्यता प्रमाणित करने के लिये प्राय वादी प्रतिवादियों द्वारा किया जाता है)।

(३) जाली बही-खाते आदि बनाना। (अधिकांश सरकारी टैक्सों की चोरी करने के लिये बनाये जाते हैं एवं बनाने वाले प्राय व्यापारी होते हैं)।

(४) जाली नोट या सिक्का बनाना। (यह सरकार एवं जनता के साथ बहुत बड़ी धोखाबाजी करने वाले व्यक्तियों का काम है)

(५) मिथ्याप्रमाणपत्र अर्थात् झूठे सार्टीफिकेट देना। जैसे डॉक्टर लोग पैसे लेकर बीमार न होने पर भी बीमारी का एवं मामूली चोट लगने पर गम्भीर चोट लगने का प्रमाणपत्र दे देते हैं।

उपरोक्त पाचों अतिचारों से बचने पर सत्यव्रत की साधना हो हो सकती है अन्यथा व्रत भङ्ग हो जाता है।

(६) प्रश्न—श्रावक को और क्या करना चाहिये ?

उत्तर—बिना विचारे न बोलना चाहिये एव बोलने के बा अपने वचन को असत्य नही करना चाहिये।

श्रावक के लिये समय की पाबंदी भी जरूरी है। भोजन व निमन्त्रण मान लेने के बाद समय पर और कहीं चला जाना ए दूसरे काय मे लग कर निमन्त्रणदाता को हैरान करना लज्जास्प है। इसी प्रकार सभा सोसाइटी मे अध्यक्ष या प्रमुख-वक्ता बनकर वहा समय पर न पहुँचना भी बहुत बुरा है।

व्यवहार रखने के लिए कपट सहित झूठ बोलना भी श्रावक को शोभा नहीं देता। जैसे—कोई मोटर मागने आता है तो कह देते है कि ड्राइवर बीमार है या इंजिन बिगडा हुआ है।

(७) प्रश्न—आज दुनियां बात बात में बेईमानी कर रही है एव मर्यादा को तोड रही है। देखिये —विद्यार्थी नकल मार कर परीक्षा मे उत्तीर्ण हो रहे हैं। अध्यापक निर्धारित सख्या से अधिक ट्यूशनें कर रहे हैं। व्यापारी लोग छुट्टी के दिनों मे छिपकर व्यापार चला रहे है। सेठ नौकरों द्वारा आठ दस घण्टों से अधिक काम ले रहें हैं। नौकर मालिक का काम करने से जी चुरा रहे हैं। वकील-बैरिस्टर श्रीमन्तों के केसों को उलझा कर उनसे अधिक पैसा झाड रहे हैं। डाक्टर गरीबों को अच्छी दवा नही दे रहे एव धनिक रोगी हाथ मे आने पर

जल्दी-से पिण्ड नहीं छोड़ रहे। ऐसी परिस्थिति में श्रावक को क्या करना चाहिये ?

उत्तर—श्रावक को चाहिये कि वह उपयुक्त वाले कारनामों से बच कर अपनी प्रामाणिकता का आदर्श दुनियाँ के सामने रखे एवं सत्यधर्म का शान बढ़ाये।

चौथा-पुञ्ज

(१) प्रश्न—तीसरे अणुव्रत में श्रावक को क्या करना चाहिए ?

उत्तर—अदत्तादान अर्थात् चोरी का मर्यादित उपरान्त त्याग करना चाहिए। स्वामी की आज्ञा के बिना उसकी वस्तु को लेना चोरी है। चाहे स्वामी के आगे डाकुओं की तरह ली जाय अथवा उसकी नजर चुराकर चोरों की तरह ली जाय।

(२) प्रश्न—चोरी कितने प्रकार की होती है ?

उत्तर—चार प्रकार की मानी गई है—१ द्रव्यचोरी २ क्षेत्र चोरी ३ कालचोरी ४ भावचोरी।

धन धान्य आदि द्रव्य को चोरना द्रव्यचोरी है। खेत, बाग मकान आदि को दबा लेना क्षेत्रचोरी है। वेतन किराया व्याज आदि लेने देने में न्यूनाधिक समय कहना कालचोरी है तथा किसी कवि, लेखक अथवा वक्ता के भावों को चुराना या आगमों का अर्थ बदल देना भावचोरी है। दूसरी तरह से चोरी दो प्रकार होती है—सभ्यचोरी और असभ्यचोरी।

(३) प्रश्न — क्या चोरी भी सभ्य होती है ?

उत्तर — सभ्य उपायों से अर्थात् राजकीय नियमानुसार दण्ड न मिले उन तरीकों से दूसरों का धन हड़प लेना सभ्यचोरी है। जैसे—

१ कई लोग अपने व्यापार का झूठा रोब जमाकर लोगों से सामान लाते हैं, व्यवहार करते हैं और अपने यहां उनके लाखों रुपये जमा रखते हैं। इस प्रकार विश्वास जमाकर झूठा जमा-खर्च करके एक दम दिवाला निकाल देते हैं।

२ कई व्यापारी अपनी सम्पत्ति के बल से बाजार में वस्तुओं के भावों को एकदम घटा बढ़ाकर लाखों रुपये कमा लेते हैं। फलस्वरूप छोटे छोटे हजारों सटोरिये मारे जाते हैं।

३ कई लोग सार्वजनिक संस्था या लोकोपयोगी कार्यों के लिए धन इकट्ठा करके नाममात्र उन कार्यों में लगाते हैं और शेष खुद हजम कर जाते हैं।

४ कई पत्रों हैण्डबिलों द्वारा विज्ञापन करके लोगों से पेशगी कीमत लेकर ठगाई करते हैं। जसे—एक विज्ञापनबाज ने समाचार पत्र में लिखा कि केवल एक आने की टिकिट भेज देने मात्र से हम वह दवा देते हैं जिसको पास रखने पर भोजन करते समय मक्खियाँ नहीं सतातीं। हजारों लोगों ने उसके पास एक एक आने के टिकट भेजे। विज्ञापक ने एक एक पैसे के कार्डों पर टिकिट भेजने वालों को उत्तर दे दिया कि आप खाते समय कृपया अपना एक हाथ हिलाते जाइये फिर आप को मक्खियाँ नहीं सता सकेंगी।

(४) प्रश्न—सम्यचोरी का दिग्दर्शन करा [illegible]

का रहस्य बतलाइये।

उत्तर—जिससे राजा दण्ड दे और लोग निन्द [illegible] कह कर पुकारें वह असम्यचोरी है। शास्त्र में इसके [illegible] गये हैं[1]—१ खात्रखनन २ ग्रन्थिभेदन ३ यन्त्रोद्घाटन ४ [illegible] वस्तुहरण ५ सस्वामिकवस्तुहरण।

(१) शस्त्रों के प्रयोग से मकान दूकान आदि को तोड़ [illegible] कर किसी भी प्रकार का धन माल (सचित्त—गाय भैंस आदि [illegible] अचित्त—रुपये सोना चांदी आदि) निकालना खात्रखनन नाम [illegible] चोरी है।

(२) किसी की गठरी को खोलकर उसमें से माल निकाल लेना या माल को बदल देना ग्रन्थिभेदन नाम की चोरी है। जेबकतरे और रेलकर्मचारी (जो पार्सल आदि से माल निकालते हैं) इसी चोरी के अपराधी हैं।

(३) स्वामी की आज्ञा के बिना चोरी की भावना से [illegible] कर या नई चाबी लगाकर धन माल निकालना यन्त्रोद्घाटन [illegible] की चोरी है।

(४) वस्तु के स्वामी का पता होने पर भी [illegible] वस्तु को चोरी की नीति से उठाना [illegible] चोरी है।

१—श्रावकावश्यक प्र० ४

(५) स्वामी की उपस्थिति म घरों पर डाका डालना या रास्ते मे लूट-खसोट करना स्वस्वामिकवस्तुहरण नाम की चोरी है।

ये पांचो असभ्य एव बडी चोरियां हैं। श्रावक इनका यथार्थ उपरान्त त्याग करता है, लेकिन वह कहता है कि दूसरों के माल को हजम करने की भावना से म—ये पांचों प्रकार की चोरियां नहीं करूँगा किन्तु मेरा धन माल किसी ने दबा रखा होगा तो उसे प्राप्त करने के लिए पूर्वोक्त कार्य करने का मेरे आगार (छूट) है।

जंगल से दातुन, खेतों से ककडी मतीरी एव बागों मे से फल फूल आदि यदि स्वामी की आज्ञा के बिना तोडे जांय तो वह भी चोरी है। गृहस्थ के नाते कदाचित त्याग न कर सकें तो भी श्रावक को, जहा तक हो सके, ऐसी चोरी से बचना चाहिए।

(५) प्रश्न—मनुष्य चोरी क्यों करता है ?

उत्तर—चोरी का आन्तरिक कारण असन्तोष एवं लोभ है। प्राणी असन्तोष से हैरान होकर और लोभ से कलुषित होकर ही चोरी करता है[1]। एक अनुभवी ने कहा है कि—चोरी की माँ गरीबी है और बाप अज्ञान है। ज्ञानी व्यक्ति गरीबी म भी चोरी नहीं करता।

चोरी के बाह्य कारण अनेक हैं। उनमे से पहला कारण बेकारी है। दुष्काल आदि के समय रोटी एव रोजगार न मिलने से विवश होकर नीची श्रेणी के लोग लूट खसोट या चोरी करने लग जाते हैं। इसका मुख्य कारण है राज्य की अव्यवस्था। अगर उस समय सरकार

१—उत्तरा० ३२।२६।

व्यवस्था करके उन लोगों को काम में लगा दे तो देश में अमन चैन रह जाता है एवं चोरी डकैती आदि के उपद्रव नहीं होते।

चोरी का दूसरा बाह्य कारण फिजूलखर्ची है। इसमें पहला नम्बर जुआ शराब रण्डीबाजी आदि दुर्व्यसनों का है। दुर्व्यसनी प्रथम घर की चोरी करते हैं और वहाँ हाथ न लगने पर बाहर की चोरी करने लग जाते हैं। फिजूलखर्ची में दूसरा नम्बर सामाजिक-कुप्रथा का है। विवाह आदि में और मौसर प्रथा के अनुसार खर्च कर लिया जाता है फिर उसकी पूर्ति के लिये सभ्य या असभ्य तरीकों से लोगों का माल लूटा जाता है।

चोरी का तीसरा बाह्य कारण है यश कीर्ति। कीर्ति के भूखे लेखक-कवि दूसरों के भावों पदों को चुराते हैं तथा यश के अभिलाषी सेठ-साहूकार गरीबों को चूस चूस कर धन इकट्ठा करते हैं और फिर दानवीर बनकर वाह वाही लूटते हैं।

चोरी का चौथा बाह्य कारण है स्वभाव। बहुत से लोग धन की कमी न होने पर भी आदत से लाचार होकर चोरी करते हैं। चोरी किये बिना उनको रोटी भी हजम नहीं होती। चोरी की बुरी आदत प्रायः बचपन से पड़ती है। उसमें अधिकांश दोष माता-पिता का होता है।

(६) प्रश्न—चोरी के पाप से बचने के लिए श्रावक को और क्या करना चाहिए?

उत्तर—इन पाँच अतिचारों का परित्याग करना चाहिए[१]—

१—उपासकदशा॰अ॰ १।

१ स्तेनाहृत २ स्तेनप्रयोग ३ विरुद्धराज्यातिक्रम ४ कूटतुल कूटमान ५ तत्प्रतिरूपक व्यवहार।

(१) चोरो की चुराई हुई वस्तु को बहुमूल्य समझकर लोभवश खरीदना स्तेनाहृत अतिचार है।

(२) चोरो को चोरी करने मे प्रेरणा देना-सहायता देना स्तेन प्रयोग अतिचार है। चोरों को चोरी के उपकरण देना रहन के लिए आश्रय देना खाने के लिए भोजन देना एव उनका माल बेचना—ये सभी चोरी को प्रेरणा के प्रकार हैं। प्रश्नव्याकरण अ० ३ में चोरी की १८ प्रसूती (चोरी में सहायता देने वाली बातें) कही है।

३ शत्रु राजाओं के राज्य मे विरोध के समय आना जाना विरुद्धराज्यातिक्रम अतिचार है क्योंकि उस समय विरोध के कारण एक राज्य से दूसरे राज्य म आने की मनाही होती है।

राजा को आज्ञा के विरुद्ध विदेशों स माल मगवाना और वहाँ से वहा भेजना जिस वस्तु के व्यापार पर सरकारी प्रतिबन्ध हो उसका व्यापार करना, नियमित भावों से अधिक मूल्य लेकर ब्लेक (चोर बाजारी) करना तथा सरकारी टेक्स जकात आदि को चुराना—ये सभी काम इसी अतिचार के अन्तगत समझ लेने चाहिये।

४ तोल माप म लोभवश न्यूनाधिकता करना अर्थात् वस्तु लेते समय अधिक लेना एव देते समय कम देना कूटतुला कूटमान अतिचार है।

वस्तु आदि का लेन देन दो प्रकार से होता है—तराजू आदि से तोल कर या गज मीटर आदि से माप कर। हाँ ! तो श्रावक को

तोल माप के साधन प्रमाण से हीन—अधिक यानि लेने के भारी और देने के हल्के या बडे-छोटे न रखने चाहिये तथा क्रय विक्रय करते समय जान-बूझ कर न तो अधिक लेना चाहिए और न कम देना चाहिए। ग्राहक चाहे बालक हो वृद्ध हो मूर्ख हो अथवा विद्वान् हो अपनी प्रामाणिकता का उल्लंघन कभी न करना चाहिये।

कुरान मे कहा है कि नाप-तोल मे कमी न किया करो[1]। बडी खराबी है नाप-तोल मे कमी करने वालों के लिए[2]। बाइबल मे कहा है कि न्याय मे, परिमाण मे तोल मे और नाप मे कपट न करना, सच्चा तराजू, धर्म के बटखरे सच्चाएपा और धर्म की तौल तुम्हारे पास है[3]।

५ बहुमूल्य बढ़िया वस्तु मे अल्पमूल्य वाली घटिया वस्तु (जो उसी के सदृश रूप रंग वाली एव उसमें खप सकने वाली हो) मिला कर बेचना। असली के सदृश आकार प्रकार वाली नकली वस्तु को असली के नाम से बेचना तथा अच्छा नमूना दिखाकर हल्का माल भर देना तत्प्रतिरूपकव्यवहार अतिचार है।

आज कल मिलावट का बाजार बहुत तेज चल रहा है—आटा मे चिकना-पत्थर घी मे वेजीटेबल, दूध म पानी एव मलाई पैदा करने के लिए स्याहीसोख, शक्कर मे सेकोरन हल्दी मे रामरज लालमिर्च मे गेरू, कालीमिर्च मे पपीते के बीज, बादाम की गिरियों मे खुमानी

१—कुरान २१।४
२—कुरान ८३।१
३—पुरानी बाइबल तोरा लैव्यव्यवस्था १६।३५

की गुठली, सुपारी में खजूर की गुठली एवं पीसे हुए मसालों में बुरादा मिट्टी कंकर आदि मिलाकर व्यापारी लोग जनता को धोखा दे रहे हैं और और पापों की गठरियाँ भर रहे हैं।

कपड़ा बनाने वाले मिल-मालिक पहले बहुत बढ़िया कपड़ा निकालते हैं किन्तु चल पड़ने के बाद सूतों में कमी करने लगते हैं। औषधि बनाने वालों का भी यही हाल है। प्रारम्भ में औषधियाँ जितना लाभ दिखाती हैं, कुछ समय के बाद उनमें उतना तेज प्रायः नहीं रहता। कारण यही है कि बनानेवाले औषधियों में प्रमुख चीजों की मात्रा कम कर देते हैं या घटिया किस्म की डालने लग जाते हैं।

प्रश्न ७ ब्लेक का त्याग करने वाला श्रावक यदि ब्लेक की कमाई खाय तो?

उत्तर व्रत का उपहास होगा और धर्म को लज्जा लगेगी। चाहे वह करण-योगों के हिसाब से खुद को निर्दोष मानता रहे दुनियाँ उसको धर्मी न कह कर ढोंगी ही कहेगी।

प्रश्न ८ रिश्वत लेना बड़ी चोरी है या छोटी?

उत्तर शास्त्रवाणी के अनुसार रिश्वत बहुत बड़ी चोरी और विश्वासघात है।

आज के लोगों ने इसको दाल-रोटी बना रखा है। जिधर भी देखा जाय रिश्वत ही रिश्वत नजर आ रही है।

आज किसी को अपनी पूँजी लगाकर दुकान करनी हो तो प्रायः लाइसेंस चाहिये और लाइसेंस देने वाला कुछ भेंट-पूजा लिए बिना बात नहीं करता।

अगर बच्चों को स्कूलों कॉलेजों में दाखिल करना हो तो प्रिंसिपलों–प्रोफेसरों–मास्टरों की जेब गर्म किये बिना काम नहीं बनता।

अगर लम्बी मुसाफिरी के लिये सीटें रिजर्व करवानी हों तो स्टेशनमास्टर मुँह फाड़े दृष्टिगोचर होते हैं एवं माल के डिब्बों की आवश्यकता हो तो माल्बाबू उसी रूप में मिलते हैं।

अगर अदालत में छोटी बड़ी कोई दरख्वास्त पेश करनी हो तो चपरासी कहते हैं भाई ! दरख्वास्त पर कुछ वजन रखो ! अन्यथा उड़ जायगी, अर्थात् कुछ हमें दो !

अगर किसी के साथ मार-पीट हो जाय तो रिश्वत लिये बिना पुलिस थाने वाले सच्ची रिपोर्ट भी प्रायः नहीं लिखते।

अगर नया मकान बनवाना हो तो नगरपालिका अधिकारी रिश्वत के बिना सहज मे नहीं बनने देते।

बड़े शहरों (बम्बई-कलकत्ता जैसे) में यदि किराये पर दूकान लेनी हो तो सलामी या पगड़ी के रूप में हजारों रुपये गुप-चुप दिये बिना काम नहीं बनता।

प्रश्न ६—रिश्वत का वास्तविक अर्थ क्या है ?

उत्तर—स्वार्थसिद्धि के लिये अप्रामाणिक रूप से कुछ लेने-देने का नाम रिश्वत है। यह नोट, दूध घी, चीनी, फ्रूट, मिठाई, वस्त्र एवं आभूषण आदि अनेक रूपों में दी जाती है। कहीं चुप चाप नोट दिये जाते हैं तो कहीं दूध-चाय, सोडा लमन एवं शराब आदि पिलाये जाते हैं। कहीं अनाज एवं चीनी की बोरियाँ भेजी जाती हैं तो कहीं घी तेल के पीपे पहुँचाये जाते हैं। कहीं नायलोन की साड़ियाँ उपस्थित

की जाती हैं तो कहीं टेरेलीन के सूट भेंट किये जाते हैं। अधिकारियों का जैसा मुख होता है, प्रायः वैसा टीका निकालना ही पड़ता है।

राज्य कर्मचारी यदि रिश्वत लेना छोड़ दें तो राज्य की अर्थ व्यवस्था काफी हद तक अच्छी हो सकती है। इनकम टैक्स अधिकारी सौ रुपये लेकर सरकार के हजारों का नुकसान कर देते हैं। इंजिनियर ठेकेदारों से मिलकर (बांध, पुल, सड़क आदि बनाते समय लाख की जगह दो-तीन लाख उड़ा देते हैं। और तो क्या! पद स्वीकारते समय प्रामाणिकता से काम करने की विधिपूर्वक शपथ लेने वाले बड़े बड़े मन्त्री भी मौका पाकर लाखों की चटनी कर जाते हैं।

लगभग २३०० वर्ष पूर्व कही हुई चाणक्य महर्षि की वाणी आज अक्षरशः मिल रही है[१]। उन्होंने कहा था कि जिस प्रकार जीभ पर रहे हुए मधु या विष का स्वाद न लेना अशक्य है उसी प्रकार धन सामने आने पर उसे न लेना राज्यकर्मचारियों के लिये अशक्य-सा है। जैसे जल में संचरण करते हुए मत्स्य कब जल पी लेते हैं, उसका पता नहीं चलता, उसी प्रकार काम नियुक्त राज्य कर्मचारी कहां अर्थ ग्रहण कर लेते हैं उसका सहज में पता नहीं लग सकता।

(१०) प्रश्न—रिश्वत लेना तो चोरी है किन्तु विवशतावश देनी पड़े तो?

उत्तर—देना भी चोरी ही है क्योंकि देने वाले ही रिश्वत लेना सिखाते हैं तथा अधिकांश रिश्वतदाता तो दस की रिश्वत देकर स्वयं सौ-दो सौ की सरकारी चोरी करते हैं।

१—कौटिल्य अर्थशास्त्र ६२ ६३

(११) प्रश्न—वोटों के लिये पैसा लेना-देना भी क्या रिश्वत है ?

उत्तर—रिश्वत ही, नहीं दुनियाँ के साथ बहुत बड़ी धोखेबाजी है। इसके बल से ही अयोग्य व्यक्ति देश के कर्णधार बनते हैं एवं प्रजा का शोषण होता है। श्रावक को वोट की प्राप्ति के लिये किसी को धन का प्रलोभन न देना चाहिए तथा न ही पैसा लेकर किसी को वोट देना चाहिये।

(१२) प्रश्न—चोरी के विषय मे प्रभु ने विशेष क्या कहा है ?

उत्तर—प्रश्न व्याकरण अ०३ में प्रभु ने कहा है कि चोरी अपयश करने वाली है अनार्यों का काम है, सभी सन्तों द्वारा निन्दनीय है, प्रिय मित्रों मे भद एव अप्रीति उत्पन्न करने वाली है तथा राग द्वेष से भरी हुई है।

पकड़े जाने पर चोरों की बड़ी भारी दुर्दशा होती है। राजपुरुष उन्हें हथकड़ी बेड़ी पहना कर राज मार्गों मे घुमाते हैं। कइयों को शूली एव वृक्ष पर लटकाते हैं। कइयों को हाथ पर बांधकर पर्वत से गिराते हैं। कइयों के नाक कान-हाथ पर आदि काटते हैं तथा कइयों को जन्मकैद एव देश निकाले की सजा मिलती है। इस जन्म मे चोरों को इस प्रकार अनेक कष्टों का सामना करना पड़ता है। फिर मर कर वे नरक मे जाते है, जहा उत्कृष्ट असख्य वर्षों तक नरक भव-सम्बन्धी अनन्त वेदना सहन करते हैं।

नरक से निकल कर तिर्यचयोनि में भटकते हैं। कदाच मनुष्य जन्म पाते हैं तो भी अनार्य एव घृणितकुल मे उत्पन्न होते हैं। उन्हें तत्त्वज्ञान नहीं मिलता। वे हिंसा एव व्यभिचार मे आनन्द

मानने वाले होते हैं और मरकर फिर चतुर्गतिरूप संसार में परिभ्रमण करते हैं। इस वीतरागवाणी पर श्रावक को सूक्ष्मदृष्टि से विचार करना चाहिये एवं चोरी के पाप से जहाँ तक हो सके बचकर मनुष्य जन्म को सफल बनाना चाहिये।

पाँचवाँ-पुञ्ज

(१) प्रश्न—चौथा अणुव्रत समझाइये ?

उत्तर—चौथा ब्रह्मचर्य अणुव्रत है। इसमें ब्रह्मचर्य की साधना की जाती है। ब्रह्मचर्य की महिमा अनन्त एवं अपार है। अथर्ववेद का कथन है कि ब्रह्मचर्य सब व्रतों में उत्कृष्ट है। उपनिषद का फरमान है कि ब्रह्मचर्य से ब्रह्मलोक की प्राप्ति होती है।[१]

जैन शास्त्रों में कहा है[२]—ब्रह्मचर्य महाव्रतों एवं अणुव्रतों का मूल है, शुद्ध हृदयवाले साधुओं द्वारा सेवित है, जगत की सब पवित्र वस्तुएं इसके द्वारा पवित्र होती हैं, मुक्ति एवं स्वर्ग का खुला द्वार है, देवेन्द्रों नरेन्द्रों द्वारा नमस्कृत एवं पूजनीय है तथा जगत में सर्वोत्कृष्ट मंगलमार्ग है।

एक ब्रह्मचर्य की आराधना करने पर शील, तप, विनय, संयम क्षमा, निर्लोभता गुप्ति आदि सभी व्रतों गुणों की आराधना हो जाती है। वैसे ही इहलोक-परलोक में यश कीर्ति और विश्वास की प्राप्ति

१—छान्दोग्योपनिषद् ८।४।३

२—प्रश्नव्याकरण ९

होती है। अत निश्चल भाव से ब्रह्मचर्य का पालन करना चाहिए।

(२) प्रश्न—ब्रह्मचर्य का क्या अर्थ है ?

उत्तर—जननेन्द्रिय इन्द्रियसमूह और मन की शान्त अविकार दशा को ब्रह्मचर्य कहते हैं[1] अथवा शरीर, मन और वचन से सब अवस्थाओं में सर्वदा एव सर्वत्र मैथुन-त्याग का नाम ब्रह्मचर्य है।[2]

प्रश्न ३—मैथुन का क्या मतलब है ?

उत्तर—स्त्री-पुरुष रूप मिथुन (जोडा) की कामरागजनित सभी चेष्टायें मैथुन हैं[3]। मैथुन अर्थात् अब्रह्मचर्य। इसके आठ अङ्ग माने गये हैं[4]—(१) स्त्री आदि का स्मरण करना (२) उनके रूप आदि का कीर्तन करना अथवा कामरस उत्पन्न करने वाले ग्रन्थ पढना या गीत गाना (३) स्त्री आदि के साथ क्रीडा करना (तास चौपड़ होली आदि खेलना) (४) उन्हे रागदृष्टि से देखना (५) उनसे एकान्त मे बात करना (५) उन्हें प्राप्त करने का सकल्प—निश्चय करना (७) उन्हें प्राप्त करने के लिए प्रयत्न करना (८) प्रत्यक्ष सहवास—सभोग करना।

अब्रह्मचर्य तप, सयम एव ब्रह्मचर्य के लिये विघ्नरूप है, सयम-जीवन का भेद करने वाला है प्रमाद का मूल कारण है नीच पुरुषों द्वारा सेवित तथा सत्पुरुषों द्वारा त्याज्य है[5]।

१—मनोनुशासन ६।५

२—याज्ञवल्क्यस्मृति

३—जैनसिद्धान्त दीपिका ७।८

४—दक्षसहिता

५—प्रश्नव्याकरण ४

प्रश्न ४—अब्रह्मचर्य सेवन मे इतना क्या नुकसान है ?

उत्तर—इससे दो प्रकार का नुकसान होता है—शारीरिक और आत्मिक।

शारीरिक नुकसान—सुश्रुत (वैद्यकशास्त्र) के अनुसार मनुष्य जो खाता है, सर्वप्रथम उसका रस बनता है, रस से रक्त बनता है, खून गाढा होकर माँस का रूप लेता है, मास से मेद (चरबी) तयार होता है, मेद से हड्डी बनती है, हड्डी से मज्जा (हड्डी का रस) की उत्पत्ति होती है और उसके सार तत्त्व से वीर्य बनता है[1]। वीर्य सभी धातुओं का राजा एव सारभूत पदार्थ है। इसके पुष्ट रहने से शरीर पुष्ट रहता है और क्षय होने से शरीर नष्ट-तेजहीन हो जाता है। अब्रह्मचर्य सेवन से वीर्यनाश अवश्य होता है अत यह शारीरिक नुकसान करनेवाला है। इसके सिवाय अति मैथुन से शरीर मे क्षय प्रमेह आदि भयकर रोग भी उत्पन्न हो जाते हैं।

आत्मिक नुकसान—गौतम स्वामी के प्रश्न पर भगवान ने फरमाया कि[2] जिस प्रकार रुई से या बूर से भरी हुई नली मे तप्त-लोहे की सलाई डालने से रूई का तथा बूरे का नाश होता है, उसी प्रकार कामाचार करने वाला स्त्री योनि मे रहते हुए जीवों की घोर हिंसा करता है। ये जीव सन्नी पञ्चेन्द्रिय है और इनकी संख्या नव लाख मानी गयी है (जो पुत्र-पुत्री आदि उत्पन्न होते है वे इन्ही मे से

१—रसाद्रक्त ततोमासं मासाद्मेद प्रजायते। मेदसोऽस्थिनततोमज्जा, मज्जातोशुक्रसभव (सुश्रुत)।

२—भगवती २।५

जीवित रह कर होते हैं) इनके सिवाय सम्मूर्च्छिम जीव तो एक बार के भोग से असंख्य मारे जाते हैं।

आधुनिक कामविज्ञान (साइंस आफ सेक्स) के अनुसार वीर्य में अनेक पुबीज माने गये हैं (जो अणुवीक्षण यन्त्र से घूमते हुये नजर भी आते हैं)। इन्हीं पुबीजों में से कोई एक स्त्री बीज के साथ मिलकर गर्भ रूप में स्थित होता है। एक बार के स्त्री-प्रसंग में २० करोड़ से ५० करोड़ तक पुबीज वीर्य के साथ मनुष्य के शरीर से निकलते हैं, किन्तु योनि मार्ग की गर्मी से तड़फ-तड़फ कर मर जाते हैं।

शास्त्रीय और वैज्ञानिक, दोनों ही मान्यताओं के अनुसार अब्रह्मचर्य-सेवन में घोर हिंसा है, और जहाँ हिंसा है वहाँ आत्मिक-नुकसान स्पष्ट है ही। इस रहस्य को समझकर विज्ञजनों को अब्रह्मचर्य का सर्वथा त्याग कर देना चाहिये।

प्रश्न ५—गृहस्थ अब्रह्मचर्य का सर्वथा त्याग कैसे कर सकता है?

उत्तर—सर्वथा त्याग न कर सकने के कारण ही उसके लिये स्वदार-सन्तोषव्रत कहा गया है। उसे जीवन भर के लिये परस्त्री का परित्याग करके स्वस्त्री में ही संतोष करना चाहिए अर्थात् अब्रह्मचर्य सेवन की मर्यादा करना चाहिये। (श्राविका के लिये परपुरुष का त्याग एवं स्वपति की मर्यादा होती है।)

प्रश्न ६—स्वस्त्री (स्वपति) के विषय में मर्यादा कैसे होती है?

उत्तर—इस प्रकार हो सकती है। जैसे—दिन में सहवास न करना, एक रात में दो बार संसर्ग न करना, पञ्चतिथियों का परित्याग करना तथा स्त्री गर्भवती होने के बाद जब तक बालक स्तन-पान करे वहाँ तक संयम से रहना।

ऐसे स्वस्त्री-सम्बन्धी ब्रह्मचर्य को मर्यादित करते करते जब कामपिपासा शान्त हो जाय जब, अपनी पत्नी (पति) की सम्मति से सदा के लिये ब्रह्मचारी बन जाना चाहिये।

प्रश्न ७—दिन का मैथुन अशुभ है[1], गर्भवती स्त्री के साथ भोग करने से गर्भ का नाश होने की सम्भावना है एवं स्तन पान करने वाले बालक की विद्यमानता में भोग करने से दूसरा गर्भ रहने पर दूध आना बन्द हो जाता है, उससे बालक को कष्ट होता है। किन्तु एक रात में दो बार तथा तिथियों का विशेष निषेध करने का क्या हेतु है ?

उत्तर—एक बार भोग करने के बाद बारह मुहूर्त तक स्त्री योनि सचित्त रहती है[2] उसमें उत्कृष्ट नव लाख संज्ञी मनुष्य एवं असंख्य असंज्ञी मनुष्य[3] उत्पन्न हो सकते हैं।

बारह मुहूर्त के अन्दर दूसरी बार भोग करने वाले को इन सभी जीवों की हिंसा का पाप लगता है। इस हेतु से रात को दो बार भोग करना निषिद्ध है।

द्वितीया पंचमी अष्टमी एकादशी, चतुर्दशी इन पाँचों तिथियों में भोग करने से दुर्गति का बंध पड़ता है। कारण यह है कि देवता नारकी एवं असंख्य वर्ष की आयु वाले युगलिक जब छः मास आयु शेष रहती है उस समय परभव की आयु बाँधते हैं तथा संख्यात वर्ष की सोपक्रम

१—चरक संहिता ८।२२
२—भगवती २।५
३—प्रज्ञापनापद १ मनुष्याधिकार

आयुवाले मनुष्य तियञ्च तीसरा नौवां सताईसवां आदि भाग आयु शेष रहने पर अथवा अन्तमुहूर्त आयु शेष रहने पर अगले जन्म सम्बन्धी आयु बाधते है[१]।

दूज आदि पाँचों तिथियाँ तीसरे भाग मे आती हैं (जैसे-तीज-चौथ इन दो भागों के जाने पर तीसरे भाग में पचमी आती है। इसी प्रकार अष्टमी एकादशी, चतुर्दशी एव दूज भी)। समवत् पूर्वाचार्यों ने इसीलिये इन तिथियों मे अब्रह्मचर्यादि पापों से बचकर धर्मध्यान करने पर विशेष बल दिया है।

मनुस्मृति अ० ३।४५ ४६ ४७ में भी पर्वतिथियों (८ १४ १५) मे तथा ऋतुकाल (रजोदर्शन से सोलह रात्रियाँ) की दस रात्रियों के सिवा अन्य रात्रियों मे स्त्री सेवन का निषेध किया गया है।

प्रश्न ८ अब्रह्मचर्य का त्याग श्रावक कितने करण-कितने योग से करता है ?

उत्तर देव-देवी के साथ दो करण तीन योग से त्याग करता है किन्तु मनुष्य मानुषी एव तिर्यञ्च तिर्यञ्ची के साथ एक करण एक योग से ही त्याग करता है (उनके साथ केवल अपने शरीर द्वारा मैथुन सेवन नही करता), क्योंकि वह अपने पुत्र-पौत्रादि का वैवाहिक सम्बन्ध जोडना है तथा गाय भैंस आदि तिर्यञ्चों को गर्भधारण करवाने के लिये सयोग मे प्रयुक्त करता है।

१—प्रज्ञापनापद ६

प्रश्न ६ देवी तिर्यञ्चो के साथ अब्रह्मचर्य सेवन का प्रसङ्ग कैसे सम्भव हो सकता है ?

उत्तर कामविह्वलता के आगे कुछ भी असम्भव नही। शास्त्रों मे कहा है कि कामविह्वल देवता मच्छ का रूप बनाकर स्वयभूरमण समुद्र की मछलियों के साथ भी भोग कर लेता है[1]। मनुष्य मानुषो के साथ देवी देवताओं की काम क्रीडा के उदाहरण अनेक ग्रंथो मे प्राप्त हैं तथा पशुओं के साथ मनुष्य मानुषो का अब्रह्मचर्य सेवन तो आज भी कई जगह सुनने को मिलता है। अत श्रावक स्वस्त्री के सिवा इन सभी का का त्याग करता है।

१०प्रश्न—स्वदार सतोष व्रत की रक्षा के लिये श्रावक को और क्या करना चाहिये ?

उत्तर—पाच अतिचारो से बचते रहना चाहिये। यथा १ इत्वरिकपरिगृहीतागमन २ अपरिगृहीतागमन ३ अनंगक्रीडा ४ परविवाह करण ५ कामभोग-तीव्राभिलाष।

१ मेरे तो परस्त्री का त्याग है—ऐसे सोच कर किसी स्त्री को धन आदि देकर कुछ समय के लिये अपने पास रखना एव उसे अपनी मानकर उसके साथ स्वस्त्री वत्-व्यवहार करना इत्वरिकपरिगृहीतागमन अतिचार है।

२ विवाहित सौहागिन स्त्री को छोड कर शेष वेश्या, कुवारी कन्या, विधवा कुलवधू आदि से गमन करना अपरिगृहीतागमन अतिचार है। उक्त काय करने वाला-ऐसे सोच लेता है कि मैंने तो पर

[1] पद २१

स्त्री का त्याग किया है। वेश्या स्वतन्त्र है, कुंवारी-कन्या अनोन्य किसी की स्त्री है ही नहीं और विधवा पतिविहीन है, अतः इनके साथ गमन करने से मेरे परस्त्री त्याग के व्रत में क्या दोष है? ... सामान्य व्यक्तियों के कुतर्क हैं। वास्तव में परस्त्री का ... से अपनी स्त्री के सिवा जगत की सभी स्त्रियों का त्याग ... है। अपरिगृहीतागमन का कइयों ने यह अर्थ भी किया है ... होने से पहले अपनी स्त्री से भी (चाहे सगपन हो चुका ...) नहीं करना चाहिये।

इत्वरिकपरिगृहीतागमन व अपरिगृहीतागमन ... आलाप सलाप आलिंगन-कुचमर्दन अधर चुम्बन ... से पहले होने वाली क्रियाओं का ग्रहण किया ... करने से तो अतिचार न रहकर अनाचार हो ... जाता है। तत्व यह है कि श्रावक को परस्त्री ... आदि भी नहीं करना चाहिये।

३ काम सेवन के जो प्राकृतिक अंग हैं ... अंगों से काम-क्रीडा करना अनङ्गक्रीडा ... मृत्तिका, वस्त्र एवं चर्म आदि की पुतली ... हस्तकर्म एवं नपुंसक गमन भी इसी ... काम मोहोद्दीपक, विषयवर्द्धक एवं ... गये हैं।

४ अपने या परिवार के सिवा ... विवाहकरण अतिचार है। विवा...

प्रेरणा है। अपने बालक बालिकाओं के विवाह तो श्रावक को व्यवहार के नाते करने ही पड़ते हैं लेकिन दूसरों के वैवाहिक झगड़ा में पड़ना उन्हें नहीं कल्पता। इस कार्य मे दोनों प्रकार से नुकसान है। द्रव्य से मनचाहा जोड़ा न जुड़ने से वर वधू जीवनभर विवाह करने वाले को कोसते हैं और भाव से अब्रह्मचर्य की वृद्धि होने से पाप लगता है।

कई लोग कन्या दान मे धर्म पुण्य मानते हुए हर एक के विवाह की दलाली करके खुश होते हैं किन्तु यह उनके अज्ञान का परिणाम है। ५ पाँच इन्द्रियों के विषयों—(शब्द रूप-गन्ध रस-स्पर्श) मे विशेष आसक्त होना कामभोगतीव्राभिलाष अतिचार है। तत्त्व यह है कि श्रावक विशिष्टविरति वाला होता है। उसने काम भोग की अभिलाषा को मन्द करने के लिये स्वदार संतोषव्रत लिया है न कि उसे तीव्र करने के लिए। अतः उसे कामरस भरे गाने न सुनने चाहिये, स्त्रियों के नग्न चित्र एवं कामोत्तेजक नाटक सिनेमा न देखने चाहिये। इत्र आदि सूंघने मे आसक्त न होना चाहिये। दूध दही, घी, मिठाई आदि पौष्टिक पदार्थ अधिक न खाने चाहिये तथा रसायन, स्तम्भनगुटिका आदि बाजीकरण (कामोद्दीपक) औषधियाँ नहीं लेनी चाहिये और विषयों की तरफ आकृष्ट करने वाले वस्त्र आभूषण, शय्या आसन आदि का सेवन तथा स्त्री आदि का आलिङ्गन न करना चाहिये। कितना लिखा जाय। श्रावक के लिए वे सभी कार्य वर्जनीय है, जिनसे कामवासना की वृद्धि हो।

प्रश्न ११—परस्त्रीगमन का विशेष निषेध किसलिए किया गया ? स्वस्त्री गमन भी तो अब्रह्मचय सेवन ही है।

उत्तर—अब्रह्मचर्य सेवन होने पर भी बहुत बड़ा अन्तर है। स्वस्त्रीगामी का लक्ष्य अब्रह्मचय को सीमित करके ब्रह्मचय की तरफ बढ़ना है एव परस्त्रीगामी का लक्ष्य विषय-तृष्णा को बढ़ाते हुए ब्रह्मचय को नष्ट भ्रष्ट करना है।

सैद्धान्तिक दृष्टि से स्वस्त्रीगामी मनुष्य केवल विवाहित स्त्री सम्बन्धी मैथुन सेवन की हिंसा का भागी होता है और परस्त्रीगामी अनेकों स्त्रियों के नव नव लाख सज्ञी पंचेन्द्रिय प्राणियों का घातक होता है।

व्यवहारिक दृष्टि से स्वस्त्रीगामी मनुष्य को इज्जत से जीता है और परस्त्रीगामी कुत्तों की श्रेणी मे गिनाजाता है। महर्षि वशिष्ठ का कथन है कि परस्त्री का ललाट पट्ट कोयले के चाँदवत् कलङ्क लगाने वाला है।[1] महर्षि मनु का फरमान है कि आयुष्य और बल को क्षीण करने के लिये परस्त्रीगमन से बढ कर दूसरा कोई कर्म नहीं है।[2] गौतम बुद्ध की वाणी है कि परस्त्रीगमन से चार बातें मिलती है[3], (१) अपयश (२) निद्रानाशक चिन्ता (३) दण्ड और (४) नरक। जैन मुनियो ने कहा है कि परस्त्री को बुरी नजर से देखने वाले जब नरक मे जाते हैं तब वहा अग्नि मे गर्म की हुई लोहे की सलाइयाँ

१—योगवासिष्ठ

२—मनुस्मृति ४।१३४

३—धम्मपद,

उनकी आखों मे डाली जाती हैं तथा जो परस्त्री का आलिगन करने वाले हैं उन्हे वहा अग्निवर्ण लोह-पुतलियों से आलिंगन करवाया जाता है। अस्तु!

वेश्या भी परस्त्री के समान अत्यन्त निन्दनीय एव परित्यजणीय मानी गई है। बडे-बडे धनकुबेर इसके जाल मे फसकर बरबाद हो गये एव हो रहे हैं। इसका प्रेम व्यक्ति के साथ न होकर मात्र धन से होता है। चाहे कोढा भी क्यों न हो, धन होने पर वह उसकी भी गुलामी करने लगती है। सदाचारी पुरुषों को परस्त्रीगमन का त्याग अवश्य होना ही चाहिये।

प्रश्न १२ पर विवाह करने का नियम तो अतिचारों मे आ गया लेकिन अपने विवाह के विषय मे श्रावक को क्या करना चाहिए?

उत्तर—बचपन मे विवाह न करना चाहिए। कारणवश हो जाय तो जब तक स्त्री ऋतुमती (रजस्वला) न हो, तब तक ब्रह्मचर्य पालना चाहिये[१]। एक स्त्री की विद्यमानता मे दूसरा विवाह न करना चाहिये (चाहे पूर्वकाल मे बहुपत्नी प्रथा रही हो, आज के युग मे यह उचित नहीं लगती।)

वृद्धावस्था मे (स्त्री का वियोग होने पर भी) विवाह नहीं करना चाहिये। इसमे कई कई मुसीबतें है। जैसे—प्रथम स्त्री के बच्चों को प्राय दु ख की सम्भावना रहती है। वृद्ध पति से सतुष्ट

१—भविष्य पुराण

न होने पर स्त्री व्यभिचारिणी हो जाती है तथा वृद्ध पति के घर में हुक्म प्राय पत्नी का ही रहता है।

वास्तव मे पुरुष को दुबारा विवाह करना ही नहीं चाहिये। कुलीन विधवा स्त्रियों की तरह उन्हें भी जीवन भर ब्रह्मचर्य का पालन करना चाहिये। स्त्रियों के जैसे एक पतिव्रत धर्म है, पुरुषों के भी उसी प्रकार एक पत्नीव्रत धर्म होना चाहिये।

आजकल कई जैन भाई विधवा विवाह खोलने की सोच रहे है लेकिन समझ मे नहीं आता कि यह सोचना उनके लिये कहाँ तक "शोभास्पद" है। जब कि उनके भगवान् तो जगत को ब्रह्मचर्य की तरफ खींच रहे हैं और वे अपनी विधवा माँ बहन बेटियों को अब्रह्मचर्य की ओर अग्रसर होने की प्रेरणा दे रहे हैं।

पश्चिमी देशों के लोग तो (चाहे वे चन्द्रलोक में जाने की तैयारी करें एवं महावैज्ञानिक हों) ब्रह्मचर्य धर्म के बारे मे प्राय कुछ सोचते ही नहीं। वे तो नई नई पत्नियों एवं नये नये पति बनाने मे ही अपना महत्त्व समझते है। देखिये १—

न्यूयार्क मे एक स्त्री ने सात वर्ष मे पाँच पति बनाये। छठे विवाह के समारोह में छोड़े हुए पिछले चार पति उपस्थित थे। एक अस्वस्थता के कारण नहीं आ सका, किन्तु उसने एक सुन्दर भेंट भेजी।

अमरीका मे एक विवाह हुआ जिसमे वर ७२ वर्ष का था एवं स्त्री ७१ वर्ष की थी। यह विवाह पुरुष का नौवाँ और स्त्री का बारहवाँ था।

१—जागृति नामक गुजराती समाचार पत्र के आधार से।

ब्रुसेल्स के एक पुरुष ने तेरह विवाह किये एवं नई नई बारह स्त्रियाँ की। तेरहवी बार एक सुन्दर स्त्री से विवाह किया किन्तु पीछे पता लगा की यह विधवा पहली बार व्याही थी वही मेरी वेन्टीस थी।

स्पेन की एक स्त्री ने तीन वर्ष मे तेरह विवाह किए जिनमे रूसी, उमराव कारखानेदार, दूकानदार मोची कृषक, जोहरी, सेनापति, नाई एवं दलाल आदि पति बनाये।

अमरीका मे एक व्यक्ति मरा जिसने सत्रह विवाह किये एवं तोडे। उसकी इच्छा पूरे बीस विवाह करने की थी।

उपर्युक्त घटनाओ से स्पष्ट होता है कि पश्चिमी देशों के लोगों को ब्रह्मचर्य के महत्व का ज्ञान नही है किन्तु भारतीय आर्य चाहे जन हैं या वैदिक, सभी ब्रह्मचर्य को श्रेष्ठ धर्म मानते हैं। उनके लिये पुनर्विवाह या विधवा विवाह का समर्थन करना उचित नहीं लगता है।

प्रश्न ११ क्या कन्या विक्रय एवं वर विक्रय करना श्रावक के लिये उचित है?

उत्तर—श्रावक के लिये तो क्या, किसी के लिए भी उचित नहीं है। धन का लेन देन करके जो विवाह किया जाता है उसे आसुरी विवाह कहा है[१]। कन्या का थोडा भी धन लेने वाला रौरव नरक मे जाता है एवं बहुत वर्षो तक मल मूत्र का भोजन करता[२]।

१—मनुस्मृति

स्मृति

धन के लोभी माता पिता आदि वर कन्या की योग्यता पर ध्यान नही देते। जहाँ अधिक पैसा मिलता है वही विवाह करने की चेष्टा करते हैं। ऐसा करने से बहुत से अयोग्य जोड जुड जाते हैं एव बालक-बालिकाएँ दुःखी होकर जीवन भर अपने माँ बापों को कोसते हैं। इतने मे ही बस नहीं होती। कई बहुओं को दौरे आने लगते हैं, कई बेटे घर से निकल आते हैं। कहीं-कही आत्महत्या की भी नौबत आ जाती है।

पुरान शास्त्रों मे प्राय कन्या विक्रय का वर्णन मिलता है किन्तु आजकल वर-विक्रय अधिक होने लगा है। चाहे कन्या विक्रय हो चाहे वर विक्रय हो, दोनों ही महापाप हैं। धन लेकर विवाह करना एक प्रकार से सतान विक्रय है यानि सतान को बेचना है—श्रावक को इस कार्य का बिल्कुल त्याग कर देना चाहिए।

छठा पुञ्ज

(१) प्रश्न—पाचवें अणुव्रत में श्रावक को क्या करना चाहिये ?

उत्तर—परिग्रह का परिमाण करके सतोषवृत्ति बढानी चाहिये।

(२) प्रश्न—परिग्रह का क्या अर्थ है ?

उत्तर—मूर्च्छा—ममत्व व आसक्ति का नाम परिग्रह है[1]। विश्व मे परिग्रह जैसा जाल एव प्रतिबन्ध दूसरा कोई नही है। इसके कलि-

---

१ दशवै ६।२१ तथा तत्त्वार्थ सूत्र ७।१२

करण्ड, अनथ, अगुप्ति अमुक्ति, तृष्णा, आसक्ति असंतोष आदि अनेक नाम कहे गये हैं[1]।

(३) प्रश्न—परिग्रह का अर्थ तो सामान्यतया धन वा यादि पदार्थ ही माना जाता है—यह कैसे ?

उत्तर—मूर्च्छा (जड चेतन) पदार्थों पर ही होती है। इसलिये पदार्थों को परिग्रह कहा जाता है। पदार्थ बाह्य आभ्यन्तर दो प्रकार के होने से परिग्रह के भी दो भेद हो जाते हैं—बाह्यपरिग्रह और आभ्यन्तर परिग्रह।

बाह्यपरिग्रह नौ प्रकार के हैं– १ क्षेत्र २ वास्तु ३ हिरण्य ४ सुवर्ण ५ धन ६ धान्य ७ द्विपद ८ चतुष्पद ६ कुप्य।

आभ्यन्तर परिग्रह के चौदह भेद हैं[2]—१ हास्य हसना, २ रति असयम मे अनुराग, ३ अरति सयम मे उदासीनता ४ भय भयानक वस्तुओं को देखकर डरना ५ शोक इष्ट के वियोग में दुःखी होना, ६ जुगुप्सा अरुचिकर वस्तु पर घृणा, ७ क्रोध गुस्सा, ८ मान अहंकार, ६ माया छल कपट १० लोभ भौतिक पदार्थों मे आसक्ति, ११ स्त्रीवेद पुरुष के साथ सगम करने की इच्छा, १२ पुरुषवेद स्त्री सगम की इच्छा, १३ नपुंसकवेद-दोनों के साथ सगम की इच्छा १४ मिथ्यात्व विपरीत श्रद्धान।

(४) प्रश्न—श्रावक इन सब का त्याग कैसे कर सकता है ?

उत्तर—सर्वथा त्याग तो नहीं कर सकता, किन्तु कुछ कुछ तो

---

१ प्रश्नव्याकरण० अ० ५

२ बृहत्कल्प १ भाष्य गाथा ८३१

कर हो सकता है। जैसे—आभ्यन्तर परिग्रह मे मिथ्यात्व का सर्वथा त्याग कर सकता है और शेष हास्य आदि को छोड़ने का यथासंभव अभ्यास कर सकता है। तथा बाह्य परिग्रह की चीजें तो बहुत ही स्थूल हैं अतः उनका यथाशक्ति त्याग करना विशेष कठिन है ही नहीं।

(४) प्रश्न—बाह्यपरिग्रह की त्यागविधि जरा समझाने की कृपा कीजिए?

उत्तर—क्षेत्र आदि बाह्य पदार्थों के त्याग—इस प्रकार किये जाते हैं।

(१) क्षेत्र—धान्य आदि उत्पन्न करने की भूमि को क्षेत्र (खेत) कहते है। यह दो प्रकार का होता है—सेतु और केतु। अरहट नहर कुआँ आदि कृत्रिम उपायो से सींची जाने वाली भूमि को सेतु एव बरसात से सीची जाने वाली भूमि को केतु कहते हैं। क्षेत्र सम्बन्धी दोनों ही प्रकार की भूमि की मर्यादा करना कि इतने बीघा या एकड से अधिक जमीन अथवा इतने खेतों से अधिक खेत नहीं रखूगा।

(२) वास्तु—घर आदि ढकी भूमि वास्तु है। घर तीन प्रकार के होते है—१ खात—अर्थात् खोद कर बनाये हुए भूमिगृह (भुंयारा) आदि।

२ उत्सृत—जमीन के ऊपर बनाये हुए महल (मंजिलों वाले) प्रासाद (शिखरबन्ध) बंगला (बाग के बीच मे बने हुए) आदि।

(३) ... गृह के ऊपर बनाये हुए मन्जलादि

घर आदि की संख्या या कीमत के आधार पर मर्यादा कर चाहिए।

(३ ४) हिरण्य-सुवर्ण—हिरण्य का अर्थ चाँदी है और ‍ का अर्थ सोना है। ये दोनों ही दो प्रकार से रखे जाते हैं—घड़े (आभूषण बर्तन आदि), बिना घड़े हुए (सिल्लें-पासे आदि)। श्रावक घर के लिए दोनों प्रकार के हिरण्य सुवर्ण रखने का ‍ त्याग करना चाहिए।

(५) धन—पैसा, आना, रुपया गिन्नी, नोट आदि सिक्का तथा हीरा पन्ना, माणक मोती आदि जवाहरात की आता है। नकद धन रखने का श्रावक को यथाशक्ति करना चाहिए।

(६) धान्य—गेहूं चना, बाजरी, मूग, मोठ मकई, ज्व चावल, सरसों तिल, गुड़, शक्कर, खाँड़, तेल एवं घी इ प्रकार के खाद्य पदार्थ धान्य में गिने जाते है। श्रावक ‍ संग्रह नहीं करना चाहिए क्योंकि इनमें जीवोत्पत्ति होने ‍ संभावना रहती है।

धान्य आदि के व्यापार से भी श्रावक को बचने ‍ करनी चाहिए, कारण जीव हिंसा के साथ साथ इस व्यापार ‍ का पाप भी विशेष रमता रहता है। धान्य का व्यापारी सोचता है कि दुष्काल पड़े तो धान्य के भाव तेज हों ‍ नफा मिले, अस्तु। धान्य आदि के संग्रह को श्रावक ‍ करनी चाहिए।

७ द्विपद—दास दासी, नौकर-चाकर मुनीम-गुमास्ता स्त्री पुत्री एवं पारिवारिक मनुष्य द्विपदपरिग्रह है तथा तोता-मैना कबूतर आदि पक्षी भी दो पर वाले होने से इसी मे माने गए तोता मैना आदि पक्षियों को रखना एवं पालना श्रावक के लिए वत है क्योंकि इस कार्य मे स्वतन्त्र विहार करने वाले पक्षियों इक प्रकार से बंद हो जाते है।

अण्डा उत्पन्न करने के लिये मुर्गी-पालन का धन्धा तो महापाप न श्रावक इसे कर ही कैसे सकता है।

दास दासी आदि रखने की भी श्रावक को मर्यादा करनी हये। अधिक नौकर होने से स्वयं प्रमादी बन जाता है। दूसरी , काम करते समय खुद जितनी यत्ना रख सकता है उतनी नौकर नहीं रखता।

स्त्री-पुत्र आदि का परिग्रह भी श्रावक को संकुचित करना हये। जसे—एक से अधिक स्त्री नही रखूंगा। इतने पुत्र-पुत्रियों । के बाद ब्रह्मचर्य पालूंगा। (अगर लोग स्वयं मर्यादा कर लें तो कार को परिवार नियोजन सम्बन्धी आन्दोलन चलाने के लिये ड़ों रुपये खर्चने की एवं लूप आदि के घृणित प्रयोग चलाने की रत ही न रहे)।

८ चतुष्पद —गाय भैस, ऊंट, घोड़ा-हाथी, बकरा, बानर भेड़, -चीता सिंह आदि चार पैर वाले पशु चतुष्पद कहलाते है। क को गाय भैस आदि पशु न रखने चाहिए,

क्योंकि जितने अधिक पशु होंगे उतनी ही घास चारा आदि की व्यवस्था अधिक करनी पड़ेगी एवं आरम्भ समारम्भ बढ़ेगा।

श्रावक यदि राजा हो एवं राज्य-व्यवस्था के अनुसार उसे हाथी घोड़े सिंह चीता आदि रखने पड़ें तो उनके वध, बंधन व भक्तपान-विच्छेद तो नहीं हो रहे, यह सजगता से ध्यान में रखना चाहिए।

दो-तीन एवं चार पहियों वाले मोटर-साइकिल रिक्शा आदि वाहनों का परिमाण भी द्विपद चतुष्पदों के साथ ही कर लेना चाहिए।

९ कुप्य —सोना चांदी के सिवा तांबा, लोहा, कांसा पीतल आदि सभी धातुएँ या घरेलू सामान, जो पिछले आठ भेदों में नहीं आता, कुप्य-परिग्रह कहलाता है। श्रावक को इसका मर्यादा उपरान्त त्याग करना चाहिए।

प्रश्न ६ इस व्रत के अतिचार समझाइए?

उत्तर —पाँच अतिचार माने गए हैं। यथा—१ क्षेत्र वास्तु के प्रमाण का अतिक्रमण करना २ हिरण्य सुवर्ण के प्रमाण का अतिक्रमण करना ३ धन-धान्य के प्रमाण का अतिक्रमण करना ४ द्विपद चतुष्पद के प्रमाण का अतिक्रमण करना और ५ कुप्य के प्रमाण का अतिक्रमण करना।

व्रत धारते समय क्षेत्रादि रूप परिग्रह का जो प्रमाण किया है, व्रत की अपेक्षा रखते हुये उस प्रमाण का अतिक्रमण करना अतिचार है। जैसे—किसी ने एक खेत उपरान्त रखने का त्याग किया, कालान्तर में उसके लगता दूसरा खेत लेकर उसी में मिला लेना एवं

दोनों को एक मान लेना। ऐसे ही निकटवर्ती घर खरीद कर बीच की दीवार निकलवा कर दो घर का एक घर कर लेना। चांदी-सोना अधिक होने पर सिल्ली-पासा अथवा बरतनों-आभूषणों में मिलाकर नियमित संख्या को पूरी करके मन को मना लेना तथा धन अधिक हो जाने पर पुत्र-पुत्रवधू आदि के नाम से जमा करके अपने व्रत को सुरक्षित समझ लेना।

वास्तव में जिस भावना से परिग्रह का प्रमाण किया गया है पालते समय वही भावना रखनी चाहिये। लोभवश गलियाँ निकाल कर मन को धोखा देना अतिचार है। व्रत इच्छाओं को सीमित करने के लिए धारा जाता है, गलियाँ निकालकर गड़बड़ करने के लिए नहीं।

प्रश्न ७—इच्छा तृष्णा एवं स्पृहा में क्या अन्तर है ?

उत्तर —अभावपूर्ति की भावना इच्छा है। धन बढ़ाने की भावना तृष्णा है और आवश्यक वस्तु की इच्छा स्पृहा है। श्रावकों को इच्छा-तृष्णा पर नियन्त्रण करना चाहिए। भगवान ने कहा है कि वस्तु का लाभ होने से लोभ घटता नहीं उल्टा बढ़ता है। आग में ज्यों-ज्यों लकड़ियाँ पड़ेंगी त्यों-त्यों वह अधिक तेज होगी। देखिये—भूखा केवल रूखी-सूखी रोटी की इच्छा करता है। रोटी मिलने पर कपड़े की स्पृहा होने लगती है। कपड़ा मिला तो रहने के लिये मकान चाहिए। मकान हो तो सुन्दर स्त्री चाहिए। वह मिल जाय तो सन्तान (पुत्र-पुत्रियाँ) चाहिए। फिर पुत्रवधू और पोते-पड़पोते चाहिए और हाथ के खर्च के लिए धन चाहिये। अब धन कमाने के

लिए कितने कष्ट उठाने पड़ते हैं, यह बात तो किसी से छिपी हुई है ही नहीं।

प्रश्न ८—लोग इतनी तृष्णा क्यों रखते हैं ?

उत्तर —दुनियाँ में वस्तु थोड़ी है और जीवों की तृष्णा अनन्त अपार है। एक एक वस्तु पर अनेक व्यक्ति ममत्व बनाए बैठे हैं। जैसे—सेठ कहता है कि घर मेरा है सेठानी कहती है—मेरा है। छोटे छोटे बच्चे, जिन्हें पूरा बोलना भी नहीं आता उनको भी अपनी तुतलाती भाषा में कहते सुना जाता है कि घर तो हमारा है। अरे, यह तो हुई मनुष्यों की बात किन्तु उस घर में रहने वाले गाय भैंस घोड़ा ऊँट बानर कुत्ते बिल्ली चूहे एवं चिड़ियाँ तक के जीव भी उसे अपना मान रहे हैं, अस्तु।

प्रश्न ९—दुनियाँ सुखी कैसे बन सकती है ?

उत्तर —मोह ममत्व एवं संग्रहवृत्ति घटने से सुख हो सकता है। आज एक ओर करोड़ों व्यक्ति भूखे मर रहे हैं एवं एक ओर कोठों में पड़ा अनाज सड़ रहा है। एक तरफ लोग नंगे फिर रहे हैं और दूसरी तरफ गोदामों में कपड़े की गाँठें भरी पड़ी हैं। एक तरफ लाखों गरीब शहरों में सड़कों पर पड़े हैं और दूसरी तरफ बड़े-बड़े महल खाली पड़े हैं। अगर लोगों की संग्रहवृत्ति कम हो जाय तो काफी हद तक दुःख मिट सकता है।

सरकार भी प्रजा का शोषण करने में दिनों दिन वृद्धि करती आ रही है। पुराने ग्रंथों के अनुसार चक्रवर्ती लाभ (नफा) का बीसवाँ भाग प्रजा से लेते थे। वासुदेव बलदेव दसवाँ भाग लेते थे

और सामान्य राजा छठा भाग लेते थे। किन्तु आज तो सरकार पांच लाख के नफे में ३ लाख ७० हजार १६१ तक लेने का दावा करने लगी है। इसका नतीजा यह निकला है—व्यापारी वर्ग दो-दो खाते रखने लगा, लाभ छिपाने लगा एवं रिश्वतें दे देकर राज्यकर्मचारियों को नीतिभ्रष्ट करके अपना काम बनाने लगा। सरकार के विशेष लाभ न हुआ और व्यापारियों के मन में अमन चैन न रहा।

प्रश्न १०—तो फिर ऐसे जमाने में श्रावक क्या करे?

उत्तर—तेरापथ के अष्टमाचार्य श्री कालूगणी फरमाया करते थे कि खाने को चाहिए रोटी और पहनने को चाहिए कपड़ा। करोड़पति भी हीरों-पन्नों को तो नहीं खाते फिर क्यों अधिक हाय हाय करनी चाहिए एवं क्यों अंधा होकर धन के पीछे दौड़ना चाहिए? इन वाक्यों का रहस्य यही है कि जहाँ तक बन सके सीधा-सादा एवं सतोषी जीवन जीने की चेष्टा करो।

जमीन-जमीन को चमड़े से मढ़ा देना संभव नहीं किन्तु व्यक्ति काँटों से बचने के लिए स्वयं पैरों में जूती पहन ले—यह संभव है। इसी प्रकार आज इस कलियुगी-दुनियाँ को सुधार देना कठिन है, किन्तु व्यक्ति यदि चाहे तो स्वयं यथासम्भव सतोषी जीवन जी सकता है।

प्रश्न ११—पुराने जमाने में श्रावक व्यापार कैसे करते थे।

उत्तर—आनन्द कामदेवादि श्रावकों का इतिहास पढ़ने से मालूम होता है कि उस जमाने में लोग आज की तरह ऋण लेकर व्यापार में प्रवेश नहीं करते थे। अपनी पूजी भी सारी व्यापार में

नहीं लगाते थे। वे अपने धन को तीन भागों में विभक्त करके एक भाग तो जमीन में (निधानरूप से) रखते थे। एक भाग घर-बार (जमीन वस्त्र आभूषण, गाय घोड़ा आदि) में लगाते थे और एक भाग से व्यापार किया करते थे।

तत्त्व यह है कि व्यापार में आकस्मिक नुकसान होने पर वे निधान व जमी जायदाद देकर भी अपनी इज्जत रख लेते थे। आज के लोगों की तरह दिवालिया बनने में उन्हें शर्म आती थी। उनका सिद्धान्त यह था—जाओ लाख (पर) रहो साख।

सातवाँ-पुञ्ज

(१) प्रश्न—गुणव्रत का रहस्य क्या है ?

उत्तर—पाँच अणुव्रतों के पालन में विशेष गुण—उपकार करने वाले होने से छठा, सातवाँ, और आठवाँ—ये तीन गुणव्रत कहलाते है। सब दिशाओं तथा सब पदार्थों सम्बन्धी अव्रत की जो क्रिया निरन्तर आती रहती है—इन सब व्रतों द्वारा उनमें सकोच होने से आत्मिकगुणों की विशुद्धि एवं वृद्धि होती है अत यह गुणव्रत माने जाते हैं। (छठाव्रत क्षेत्र से, सातवाँ द्रव्य से व काल से और आठवाँ भाव से आश्रवों का विशेष निरोध करके संवर गुणों की वृद्धि करता है) गुणव्रत धारण करने से कोठे में डाले हुए धान्य की तरह अणुव्रत सुरक्षित रहते हैं।

(४) प्रश्न—छठा व्रत समझाइये ?

उत्तर—छठा दिशा परिमाणव्रत कहलाता है। इसमें श्रावक दिशाओं में आने-जाने की मर्यादा करता है।

(३) प्रश्न—दिशायें कितनी होती है ?

मुख्य दिशायें तीन है—ऊर्ध्वदिशा अधो (नीची) दिशा और तिरछी दिशा। तिरछी दिशा के मुख्य चार भेद हैं—पूर्व, दक्षिण पश्चिम एवं उत्तर। इन चारों के बीच में चार दिशायें मानी गई हैं—अग्निकोण, नैऋत्य कोण वायव्यकोण और ईशानकोण।

सूर्योदय की तरफ मुँह करके खड़े हुए पुरुष के सामने पूर्वदिशा है, पीठ पीछे पश्चिमदिशा है दाहिने हाथ की तरफ दक्षिण दिशा है और बाएं हाथ की तरफ उत्तरदिशा है। पूर्व दक्षिण के बीच का भाग अग्नि कोण है, दक्षिण पश्चिम का मध्यभाग नैऋत्य कोण है, पश्चिम उत्तर का मध्यभाग वायव्यकोण है और उत्तर-पूर्व का मध्यभाग ईशानकोण है। उक्त विधि से भेद करने पर दिशायें दस हो जाती हैं[१]। इनके गुणनिष्पन्न दस नाम कहे हैं—

१ पूर्वदिशा का अधिष्ठाता देव इन्द्र है, अतः इसका गुणनिष्पन्न नाम ऐन्द्री है।

२ अग्निकोण का अधिष्ठाता देव अग्नि है अतः यह आग्नेयी कहलाती है।

३ दक्षिण दिशा का अधिष्ठाता यम देव है अतः इसे याम्या कहते हैं।

१ स्था० १०।७२० भगवती १०।१ तथा आचारांग-टीका अ० १ उ० १

४ नैऋत त्रिकोण का स्वामी नैऋत देव है, अत इसका नाम नैऋति है।

५ पश्चिम दिशा का स्वामी वरुणदेव है अत इसे वारुणी कहते हैं।

६ वायव्यकोण का स्वामी वायुदेव है, अत इसकी सज्ञा वायव्य है।

७ उत्तर दिशा का स्वामी सोमदेव है अत यह सौम्या कही जाती है।

८ ईशानकोण का स्वामी ईशानदेव है, अत इसको ऐशानी कहते हैं।

९ ऊपर का भाग अन्धकारमय होने से निर्मल है अत ऊर्ध्व दिशा का नाम विमला है।

१० नीचे का भाग गाढ़ अन्धकारमय होने से अधोदिशा का नाम तमा है।

(४) प्रश्न—दिशाओं का प्रारम्भ कहाँ से होता है?

उत्तर—रत्नप्रभा पृथ्वी के ऊपर तिर्यग्लोक के मध्यभाग में एक रज्जु परिमाण लम्बे चौड़े आकाश प्रदेशों के दो प्रतर हैं। ये प्रतर सब प्रतरों से छोटे हैं एव मेरु पर्वत के मध्य प्रदेश में इनका मध्यभाग है। इन दोनों प्रतरों के बीचो बीच गोस्तनाकार चार चार आकाश प्रदेश हैं। ये आठों आकाश प्रदेश जैन परिभाषा में आकाश के रुचक प्रदेश कहलाते हैं। ये ही रुचकप्रदेश दिशाओं और विदिशाओं की मर्यादा के कारणभूत हैं।

तत्त्व यह है कि सभी दिशाओं विदिशाओं का प्रादुर्भाव रुचक प्रदेशों से होता है। पूर्वादि चारों दिशायें प्रारम्भ में दो आकाश प्रदेश जितनी विस्तीर्ण (चौड़ी) हैं एवं उत्तरोत्तर दो प्रदेशों की वृद्धि पाती है। वे लोक की अपेक्षा असंख्य प्रदेश और अलोक की अपेक्षा अनन्त प्रदेश लम्बी तथा लोक की अपेक्षा इनका आकार मुरज-महाप्रमाण वाले मर्दलवत् और अलोक की अपेक्षा गाडी की धुरीवत् माना गया है।

चारों विदिशायें आदि से अन्त तक एक प्रदेश विस्तीर्ण है एवं छिन्नमुक्तावली (छेद किये हुए मोतियों की लड़ी) के समान उनका आकार है तथा लम्बी दिशाओं के समान ही है। ऊँची-नीची दिशाएं चार प्रकार की है एवं आदि से अन्त तक दो प्रदेश विस्तीर्ण हैं—इनका शेष वर्णन विदिशाओं के तुल्य है[1]।

प्रश्न ५ —दिशाओं की मर्यादा कैसे की जाय?

उत्तर —अपने इच्छित-स्थान से ऊर्ध्वादि दिशा का परिमाण इस प्रकार करना चाहिये। यथा—

ऊर्ध्वदिशा में—वृक्षों पहाड़ों पर, या विमानादि द्वारा आकाश में इतने कोसों से अधिक ऊपर नहीं जाऊंगा।

अधोदिशा में—कूप-वापी या नीचे प्रदेशों में (भारत की अपेक्षा अमेरिका आदि) में इतने कोसों से अधिक नहीं जाऊंगा।

तिरछी दिशा में—पूर्वादि दिशाओं में इतने इतने कोसों से आगे स्वयं नहीं जाऊंगा या माल नहीं भेजूंगा और न वहाँ से माल मंगाऊंगा एवं न पत्र-व्यवहार करूंगा।

---

१ भगवती १३।४ के आधार से

इस प्रकार क्षेत्र की मर्यादा करने से पूर्वोक्त पाँचो अणुव्रतों मे लाभ यह होता है कि सीमित क्षेत्र से बाहर आगार मे रखे हुए हिंसा असत्य आदि पाप भी बन्द हो जाते हैं।

इस व्रत को ग्रहण करते समय कई श्रावक रोगादि वश या साध्वादि के दर्शनार्थ सीमित क्षेत्र से बाहर जाने का आगार भी रखा करते हैं।

प्रश्न ६— इस व्रत के अतिचार बतलाइये ?

उत्तर—पाँच अतिचार हैं[1] —(१) ऊर्ध्वदिशाप्रमाणातिक्रम, २ अधोदिशाप्रमाणातिक्रम ३ तिर्यग्दिशाप्रमाणातिक्रम ४ क्षेत्रवृद्धि ५ स्मृति अन्तर्धान।

(१ २ ३) अनुयोग—असावधानी से ऊँची नीची एवं तिरछी दिशा की मर्यादा का उल्लंघन करना अतिचार है। यदि यह काम जान बूझ कर किया जाय तो अनाचार हो जाता है।

४ क्षेत्रवृद्धि—एक दिशा का परिमाण घटाकर दूसरी दिशा का बढ़ा लेना क्षेत्रवृद्धि अतिचार है। जसे—किसी ने चारों दिशाओं में ५० ५० कोस क्षेत्र रखा है। कारणवश पूर्व दिशा मे सौ कोस जाने का प्रसङ्ग आने पर मन में इस प्रकार समाधान करे कि पश्चिमदिशा मे तो मैं कभी जाता ही नहीं, अत उस दिशा के ५० कोस इस तरफ गिन लूंगा—ऐसे मन को सतोष देकर पूर्वदिशा मे ५० कोस से आगे बढ़ना अतिचार है।

५ स्मृति अन्तर्धान —संदेह हो जाने पर सीमित क्षेत्र से आगे चला जाना स्मृति अन्तर्धान अतिचार है। जसे—किसी के पूर्व

१ उपासक दशा अ० १

दिशा मे सौ कोस क्षेत्र रखा हुआ है लेकिन जाते समय स्मृतिभ्रंश होने से यह संदेह हो जाय कि मने ५० कोस रखे थे अथवा १०० कोस रखे थे। ऐसा संशय होने के बाद उसे ५० कोस से आगे जाना नहीं कल्पता एव जाने से उक्त अतिचार लगता है।

आठवाँ पुञ्ज

प्रश्न १—सातवें व्रत मे श्रावक को क्या करना चाहिये ?

उत्तर —सातवा उपभोग परिभोग परिमाण व्रत है। इसमे उपभोग परिभोग सम्बन्धी वस्तुओं का मर्यादा उपरान्त त्याग करना चाहिये। यह त्याग दो प्रकार से होता है भोग से और कर्म से। भोग से त्याग करने का अर्थ है–उपभोग परिभोग की वस्तुओं की मर्यादा करना तथा कर्म से त्याग करने का मतलब है—उक्त वस्तुओं की प्राप्ति के लिये किये जाने वाले व्यापारों की मर्यादा करना।

प्रश्न —२ उपभोग-परिभोग की वस्तुएँ कौन कौन सी हैं ?

उत्तर —जो एक ही बार भोग मे आती हैं, वे रोटी, पानी, आदि खाने-पीने की चीजें उपभोग कहलाती हैं एव जो बार बार भोग मे आती हैं–वे स्थान वस्त्र, भूषण, स्त्री, वाहन शयन, आसन आदि चीजें परिभोग कहलाती हैं। इन दोनों प्रकार की वस्तुओं के शास्त्र मे छब्बीस भेद किये गये हैं[१]।

---

१ उपासकदशा अ १, धर्मसंग्रह अधिकार २ तथा श्रावक प्रतिक्रमण।

प्रश्न ३—छब्बीस वस्तुओं का विवेचन कीजिये ?

उत्तर—छब्बीस वस्तुओं में प्रथम ग्यारह शरीर की स्वच्छता, सुरक्षा एवं विभूषा के लिए है, बीच की दस खान पान सम्बन्धी है, फिर तीन सुख सुविधा के लिये हैं एवं शेष दो उपसंहारात्मक है।

इनका विवेचन नीचे पढ़िये

(१) प्रातः उठते ही मनुष्य अङ्गल आता है एवं आकर हाथ मुखादि धोता है। फिर उन्हें पोंछने के लिये तौलिया-रूमाल आदि की आवश्यकता होती है, अतः सर्वप्रथम उल्लणिया विधि अर्थात् रुमाल की विधि (प्रकार) का कथन है—इसमें देशी विदेशी तथा रेशमी, सूती आदि रूमाल, गमछों की मर्यादा करनी चाहिये।

(२) हाथ आदि पोंछने के बाद दांत साफ किए जाते हैं, अतः दूसरी दन्तणविधि कही है। इसमें दातुन (नीम आदि की) मञ्जन पेस्ट टूथपाउडर, नमक, राख कोयला आदि दांत साफ करने के पदार्थों की मर्यादा करनी चाहिये।

(३) दातुन करने के बाद सिर के बाल धोये जाते हैं। पुराने जमाने में आंवला आदि के फलों से सिर धोने का रिवाज था (आजकल प्रायः साबुन काम में ली जाती है), अतः तीसरी फलविधि कही है। इसमें आंवला अरीठा मेट साबुन आदि की मर्यादा करनी चाहिये।

(४) सिरधोने के बाद स्नान की तयारी होती है एवं तेल की मालिश की जाती है। अतः चौथी अभ्यङ्गनविधि कही है। इसमें तिल-सरसों नारियल आदि के तेलों की मर्यादा करनी चाहिये।

(५) मालिश के बाद शरीर के चिकनेपन एवं मैल को हटाने के

लिये उबटन (पीठी) किया जाता था (आजकल उबटन का काम प्राय साबुन से होता है) अत पाँचवी उपटनविधि कही है। इसमें उबटन, खाद्य-साबुन आदि की मर्यादा करनी चाहिये।

(६) उबटन के बाद स्नान किया जाता है अत छठी स्नानविधि कही है। इसमे स्नान की मर्यादा करनी चाहिये जैसे—तालाब आदि में स्नान न करूँगा, दिन मे-इतनी बार से अधिक न नहाऊगा स्नान में इतने सेर से अधिक जल न लगाऊगा-पर्व तिथियों के दिनों में न नहाऊगा आदि। हजामत कराने की मर्यादा भी स्नान के साथ ही करनी चाहिये।

(७) स्नान के बाद वस्त्र पहने जाते हैं अत सातवी वस्त्रविधि कही है। इसमें सूती, देशी विदेशी, ऊनी रेशमी नाइलोन टेरालीन आदि वस्त्रों की मर्यादा करनी चाहिये। जैसे—अमुक प्रकार का वस्त्र नहीं पहनूगा अमुक मूल्य का वस्त्र नहीं पहनूगा अथवा एक वर्ष में अमुक सख्या मे अधिक पगडी कोट कमीज बंडी, धोती, पतलून (साडी घाघरा, पेटीकोट, सलवार ओढ़ना) आदि उपयोग म न लूगा (जिनसे विकार पैदा हो अथवा लज्जा की रक्षा न हो सके, ऐसे वस्त्र भी श्रावक को न पहनने चाहिये)।

(८) वस्त्र पहनने के बाद केसर चन्दन आदि का विलेपन किया जाता था (आजकल स्नो क्रीम, पाउडर, सेंट आदि लगाये जाते हैं) अत आठवीं विलेपनविधि कही है। इसमे उपयुक्त केसर आदि द्रव्यों की मर्यादा करनी चाहिए। अजन मजन कुँकुम, टीको आदि भी विलेपन क अन्तर्गत हैं।

(९) विलेपन के बाद फूलों की माला पहनने की या मुकुटादिक मे फूल लगाने का रिवाज था (इत्र के फोवे तो अब भी लगाये जाते है), अत नवी पुष्पविधि कही है । इसमे गुलाब, चमेली, केवडा-आदि के फूलों की अथवा इत्र सूघने की मर्यादा करनी चाहिये ।

(१०) इत्र आदि लगाने के बाद आभरण (जेवर) पहने जाते हैं अत दसवी आभरणविधि कही है। इसम आभूषणों की मर्यादा करनी चहिए जसे—अमुक मूल्य से या वजन से अधिक जेवर म अपने शरीर पर न पहनूगा (पुराने जमाने मे विशेष जेवर रखने के दो लक्ष्य थे एक तो शरीर अलङ्कृत रहे एव दूसरे सकट वेला मे उसकी सहायता से जीवन निर्वाह हो सके) ।

(११) स्नानादि के बाद वायु शुद्धि क लिये धूप दिया जाता है, अत ग्यारहवी धूपविधि कही है। इसमें लोबान अगरबत्ती आदि धूप के काम म आने वाले सुगन्धित द्रव्यों की मर्यादा करनी चाहिए।

ऊपर कही हुई ग्यारह विधियाँ शरीर को स्वच्छता सुरक्षा एवं विभूषा से सम्बन्ध रखने वाली हैं। अब शरीर को पुष्ट बनाने वाली एव टिका कर रखने वाली खान पान सम्बन्धी वस्तुओं की विधियाँ बतलाई जाती हैं ।

(१२) स्नानादि से निपटने के बाद दूध चाय आदि पीने का प्राय रिवाज है अत बारहवी पेयविधि कही है। इसमे दूध चाय, ठडाई, शर्बत, छाछ आदि पीने योग्य द्रव्यों की मर्यादा करनी चाहिये ।

(१३) दूध आदि क साथ कई लोग लड्डू जलेबी, पेडा बर्फी आदि मिठाई का नाश्ता भी करते हैं अत तेरहवी भक्षणविधि कही है ।

इसमें मिठाइयों की संख्या निर्धारित करके तदुपरान्त त्याग करना चाहिए।

(१४) नाश्ता के बाद मध्याह्न में भोजन किया जाता है, अतः चौदहवीं ओदनविधि कही है। विधिपूर्वक उबाल कर या रांधकर खाए जाने वाले चावल खिचड़ी पूड़ी आदि द्रव्य ओदन माने गये हैं। इनकी मर्यादा करनी चाहिये।

(१५) चावल आदि खाने के लिए दाल कड़ी आदि की जरूरत पड़ती है, अतः पन्द्रहवीं सूपविधि है। इसमें मूग, मोठ, उड़द मसूर आदि की दालों का परिमाण करना चाहिये।

(१६) चावल खिचड़ी आदि में घी-तेल, दूध-दही छाछ चीनी आदि भी डाले जाते हैं, अतः सोलहवीं विगयविधि है। विगय सामान्यतया पाच हैं—१ दूध, २ दही, ३ घी ४ तेल, ५ गुड़-चीनी आदि। मक्खन मधु मद्य और मांस-ये चार महाविगय माने गये हैं।

दूध दही घी आदि के मिश्रण से जो वस्तु बनती है अथवा तेल-घी में तली भुनी जाती है उसे कड़ाही विगय अथवा चारविगय कहते हैं। इसको मिला देने से विगय दस हो जाती है।

कड़ाही विगय तीन प्रकार की होती है—मीठी, नमकीन और फीकी।

१ मीठी —खीर श्रीखण्ड रबड़ी, हलवा, मालपूआ एवं लड्डू आदि सब तरह की मिठाइयाँ।

२ नमकीन —बड़े पकोड़े, मुंजिये कचोरी, चिवड़ा आदि।

३ फीकी ... र फीकी पीनी, खाजा, पूरी आदि

परम्परा से मुरब्बा, शर्बत, चोसी डाला हुआ नारंगी का पणा एवं आमरस आदि भी वडाही विगय में माने जाते हैं।

मद्य, मांस का तो श्रावक को सर्वथा त्याग करदेना चाहिए एवं शेष दूध आदि विगयों का मर्यादा उपरान्त त्याग करना चाहिए।

(१७) खिचडी आदि के साथ शाक की भी आवश्यकता होती है अतः सत्तरहवी शाकविधि कही है। इसमें सूखे हरे सभी प्रकार के शाकों की मर्यादा करनी चाहिए। यथा—मेरे इतने शाकों से अधिक खाने का त्याग है।

(१८) भोजन के समय आम, केले, अंगूर आदि मधुरफल भी खाये जाते हैं, अतः अठारहवी मधुरविधि कही है। मधुरफल सूखे हरे दो प्रकार के होते हैं। आम केले अंगूर आदि हरे मधुरफल हैं एवं दाख खजूर-बादाम पिस्ते नौजे आदि सूखे मधुर फल हैं। इन सबका मर्यादा उपरान्त त्याग करना चाहिये।

(१९) जीमनविधि इसमें सामान्यतया मूल सिद्धान्त वाली रोटी बाटी आदि खाद्य वस्तुएं ली गयी हैं। इनकी मर्यादा करनी चाहिये कि अमुक अमुक धान्य की रोटी आदि के सिवाय त्याग है।

(२०) भोजन करने वाले को पानी पीना भी आवश्यक है अतः उन्नीसवी पानीयविधि कही है। पानी के ठण्डापानी, गर्मपानी, खारा पानी मीठापानी, कालरपानी, बाकरपानी, सचित्तपानी, अचित्तपानी, सादापानी, सुगंधितपानी आदि अनेक भेद हैं—उनमें से यथाशक्ति करना चाहिए।

(२१) भोजन के बाद मुख को साफ एवं सुवासित करने के लिये पान, सुपारी, इलायची, पीपल, लौंग, सौंफ, धनिया चूरन, गोली आदि द्रव्य खाए जाते हैं, अतः इक्कीसवीं मुखवासविधि कही है। इसमें पान-सुपारी आदि द्रव्यों का मर्यादा उपरान्त त्याग करना चाहिए।

(२२) श्रावक के लिये साधुओं की तरह सदा पैदल चलना कठिन है, अतः बाईसवीं वाहनविधि कही है। वाहन चार प्रकार के होते हैं—चरनेवाले, फिरनेवाले, तरनेवाले और उड़नेवाले।

(क) चरने वाले —हाथी, घोड़ा, ऊंट, बैल आदि।

(ख) फिरनेवाले —रेल, मोटर, साइकिल, स्कूटर आदि।

(ग) तरनेवाले —नाव, जहाज, आगबोट आदि।

(घ) उड़नेवाले —देवविमान, हवाईजहाज, हेलीकाप्टर आदि।

इन सभी प्रकार के वाहनों पर चढ़ने का मर्यादा उपरान्त त्याग करना चाहिए।

(२३) साधुओं की तरह काष्ठ आदि के पट्टे से या साधारण कम्बलादि से निर्वाह करना श्रावक के लिए कठिन है, अतः तेईसवीं शयनविधि कहा है। इसमें उन सब चीजों की मर्यादा करनी चाहिए, जिन्हें बिछाकर सुख से सोया या बैठा जा सकता है। यथा—मैं अमुक संख्या से अधिक कुर्सी, टेबल, बेंच, खाट, पलंग, दरी, चटाई, गलीचा एवं आसन, बिछौना, तकिया आदि नहीं रखूंगा।

(२४) साधुओं की तरह नंगे पैर चलना श्रावक के लिए कठिन है, अतः चौबीसवीं उपानहविधि कही है। इसमें उस बूट, चप्पल आदि जूतों एवं खड़ाऊ आदि का मर्यादा उपरान्त त्याग करना चाहिये।

(२५) सचित्तविधि—पीछे नम्बर १२ से २१ में बोल तक जो खाने-पीने के द्रव्यों की मर्यादा बनाई गई है, उनमे (ककडी, मतीरा अगूर अनार, इलायची, सौंफ, पानी आदि) अनेक चीजें ऐसी हैं जो प्राय सचित्त अर्थात् अचित्त बनाए बिना भी काम मे ली जाती हैं। श्रावक को जहाँ तक हो सके सचित्त वस्तु खाने पीने का सर्वथा त्याग करना चाहिए अथवा मर्यादा करनी चाहिये। जैसे—सचित्त कच्चा पानी नहीं पीऊगा एव कच्ची वनस्पति आदि नहीं खाऊगा।

(२) द्रव्यविधि—अगुली एव धातु की शलाका के सिवा जो भी पदार्थ मुह मे डाले जायें वे सब अलग अलग द्रव्य माने जाते हैं। द्रव्य का अर्थ वस्तु है। दूध म ऊपर से चीनी डाली जाय तो दूध-चीनी ऐसे दो द्रव्य हो जाते हैं किन्तु बनाते समय चाहे पचास चीजें मिला दी जायें खीर लड्डू, चूरण, मिठाचार आदिवत् वह एक ही द्रव्य माना जाता है।

कई जीभ के स्वाद को जीतने के लिए थाली मे आई सभी चीजों को मिलाकर खाते हैं एव उसे एक ही द्रव्य गिनते हैं—ऐसा कार्य विशेष त्यागी-वरागी हो कर सकते हैं। कई द्रव्यों की कमी करने के लिये राधते समय खिचडी आदि मे सुपारी-चूअचा आदि डाल देते हैं और पीछे बाहर निकालकर खाते हैं, किन्तु ऐसा करना त्याग का ढोंग तथा उपहास समझना चाहिए।

हाँ तो ! द्रव्यविधि म श्रावक को जीवनभर में लिये द्रव्यों की निर्धारित करके तदुपरान्त त्याग करना चाहिये।

यद्यपि उपासकदशा सूत्र मे २१ बोलों की मर्यादा का ही वर्णन है। वाहनविधि आदि पाँच बोल धर्मसंग्रह ग्रन्थ मे वर्णित चौदह नियमों म है, किन्तु श्रावक प्रतिक्रमण के सातव व्रत मे छब्बीस बोलों की मर्यादा की परिपाटी है, अत यहाँ छब्बीस बोल दिए हैं।

प्रश्न ४—सातवें व्रत के अतिचार समझाइए ?

उत्तर—भोग की अपेक्षा स सातवें व्रत के पाच अतिचार हैं, यथा[1]—

(१) सचित्ताहार—त्याग किये हुए सचित्त द्रव्य को असावधानी वश खा लेना प्रथम अतिचार है।

(२) सचित्तप्रतिबद्धाहार त्यक्त सचित्त वस्तु से संयुक्त द्रव्य को खा लेना दूसरा अतिचार है जैसे—गुठली सहित आम को चूसना या खजूर को खाना (यद्यपि आम एव खजूर अचित्त हैं, किन्तु सचित्त गुठली स युक्त है। चाहे गुठलियाँ खायी नहीं जाती, फिर भी उनके जीवों को कष्ट होता है) अथवा हरे पत्तों पर दही-बड़े या बर्फ आदि खाना।

(३) अपक्वऔषधिभक्षणता —नही पके हुए अर्थात् कच्चे बाजरा गेहूं आदि को खाना तीसरा अतिचार है।

(४) दुष्पक्वऔषधिभक्षणता —पूरे नहीं पके हुए बाजरा, गेहूँ आदि के पोख (जिनके दाने कच्चे रह सकते हों) खा लेना चौथा अतिचार है।

१— उपासकदशा, अ० १, तथा प्रवचनसारोद्धार द्वार ६, गाथा २८१

तुच्छौषधिभक्षणता —जिनमे खाने का पदार्थ थोडा हो और फकना ज्यादा पडे—ऐसे कच्चे मूग की फली, सीताफल, ईखुखण्ड, बेरीफल (बेर) आदि खाना पाँचवाँ अतिचार है।

अतिचारों के वर्णन का अध्ययन करने से प्रतीत होता है कि श्रावक को सचित्त वस्तु खाने का त्याग अवश्य करना चाहिए। इससे कई लाभ होते है—सचित्त खाने की अव्रत (आशा-वाछा) रुकती है। जीभ के स्वाद पर विजय होती है एव सहज मे अचित्त वस्तु उपस्थित होने से क्वचित सुपात्रदान का लाभ भी मिल जाता है।

प्रश्न ५—क्या श्रावक को रात्रि भोजन का भी त्याग करना चाहिए ?

उत्तर—श्रावक को क्या मनुष्य मात्र के लिए यह त्यागने योग्य है। वैदिक-धर्म के अनुसार देवों ने दिन के प्रथम प्रहर में, ऋषियों ने मध्यान्ह मे, पितरों ने तीसरे प्रहर मे एव दैत्यों दानवों ने सन्ध्या समय सदा भोजन किया है—इन सब की वेला का अतिक्रमण करके रात को खाना अत्यन्त निकृष्ट है।[1]

आयुर्वेद का कहना है कि सूर्यास्त के बाद मनुष्य के हृदयकमल एव नाभिकमल सकुचित हो जाते हैं, अत रात को नही खाना चाहिए।

जैनशास्त्र जीवहिंसा की दृष्टि से इसका विशेष निषेध करते हैं। उनका अभिप्राय है कि यदि एक भी त्रसजीव (मक्खी मच्छर

---

[1] योगशास्त्र ३।५८।५९

आदि) भोजन-पान के समय खाया-पीया गया तो एक प्रकार से मांस भक्षण एवं रक्त पान ही हो गया।

जैन ग्रन्थों के अनुसार भोजन के साथ खाई गयी कीड़ी बुद्धि को खराब करती है, मक्खी वमन करवाती है, जू जलोदर एवं मकड़ी कोढ़ का रोग उत्पन्न करती है[1]। तथा रात्रिभोजन के पाप से जीव उल्लू काक, मार्जारी, गीध, साँभर, सूअर साँप, बिच्छू एवं गोह की योनि में जन्म धारण करता है।[2]।

जैनसाधु प्राणान्त कष्ट में भी रात्रिभोजन नहीं करते[3], किन्तु आजकल के श्रावक इस तरफ बहुत कम सोच रहे हैं, एवं रात्रिभोजन की तरफ झुक रहे हैं। अच्छे अच्छे कहलाने वाले श्रावकों के घर में प्रहर रात्रि तक भोजन चलता रहता है।

वे श्रावक इस पिछले जमाने को याद क्यों नहीं करते जब श्रावक समाज में यह नियम सुदृढ़ता से पाला जाता था एवं सर्वविद् रात्रि भोजन करने वाले जैन श्रावक के लिये तानाकसी होती थी कि क्या जैन होकर भी रात्रिभोजन करता है। अस्तु !

जमाना बदला है, रहन-सहन बदले हैं, लोगों की भावना बदली है फिर भी आत्मार्थी श्रावक को अपना धर्म निभाना चाहिए और रात्रिभोजन को सर्वदा छोड़ना चाहिए।

---

१ धर्मसंग्रह सटीक

२ योगशास्त्र ३।६ ७

३ देखो चारित्र प्रकाश पृष्ठ १ प्रश्न १२

प्रश्न ६ —जैन श्रावक के लिए मांस भक्ष्य है, या अभक्ष्य ?

उत्तर —जैन श्रावक के लिये क्या मनुष्य मात्र के लिए अभक्ष्य है। मांसभोजी एवं अमांसभोजी प्राणियों की प्रकृति एवं शरीर रचना पर विचार करने से प्रतीत होता है कि मनुष्य प्रकृति से मांसाहारी नहीं है।

देखिए ! मनोरञ्जन के लिए मनुष्य बाग बगीचा आदि स्वच्छ स्थान पसन्द करते हैं, जबकि मांसाहारी-कुत्ते आदि को मांस-हड्डीयुक्त दुर्गन्धिपूर्ण स्थान अच्छा लगता है।

मांसाहारी जीव कच्चा मांस पचा सकते हैं, किन्तु मनुष्य नहीं पचा सकते। इसके सिवा—(३) मांसाहारी पशुओं (सिंह, कुत्ता, बिल्ली आदि) के नाखून पैने-नुकीले होते हैं, किन्तु अमांसभोजी हाथी, गाय, भैंस आदि के वैसे नहीं होते।

(४) मांसाहारियों के दांत गाजर जैसे लम्बे एवं अलग-अलग होते हैं किन्तु फलाहारियों के दांत छोटे छोटे और चौड़े होते हैं तथा परस्पर मिले हुए होते हैं।

(५) मांसाहारी जीव (कुत्ता बिल्ली आदि) जीभ से चपल चपल कर पानी पीते हैं और फल घासाहारी गाय भैंस आदि पशु एवं मनुष्य घूंट भरकर जल पान करते हैं।

(६) मांसाहारी जीवों के शरीर से पसीना नहीं निकलता उनके मे थूक नहीं रहता एवं वे गर्मी से हांफ कर जीभ बाहर निकाले

हुए रहते है, किन्तु अन्न फल एवं घासाहारी जन्तुओं मे ये सभी बातें न होता।

प्रश्न ७ —मांसभक्षण के विषय में बड़ो डाक्टरों का क्या मत है ?

उत्तर —'चरकसंहिता अ० ८ म कहा है कि मांस मनुष्य के शरीर में शीघ्र नहीं पचता अत वह मनुष्य का आहार नही है।

(२) सुश्रुतसंहिता सूत्र ४६ के अनुसार मांस से कफ और पित्त के रोग उत्पन्न होते हैं, अत उसको न खाना चाहिए।

डाक्टर एल्फ्रेड साहब ने लन्दन के डाक्टरों की सभा म अपना निबन्ध पढ़ते हुए कहा था कि मास में ८० स ६० प्रतिशत कीड़े होते हैं।

मांसाहारियों के प्राय कैंसर, दाद, पायोरिया, गठिया, मृगी, उन्माद, अनिद्रा तथा पथरी आदि भयङ्कर रोग अधिक मात्रा म उत्पन्न होते हैं। जिन देशों में मांस खाने का प्रचार अधिक है वहाँ रोग अधिक है और रोग अधिक होने से वहाँ डाक्टरों की संख्या भी अधिक है। देखिए! आस्ट्रेलिया निवासी दुनियाँ मे सबसे अधिक मांस भक्षण करते हैं अत वहाँ डाक्टर भी सर्वाधिक हैं। जरा निम्न लिखित अङ्कों पर ध्यान लगाइये[१]।

---

१ यह हिसाब कुछ वर्षों पहले का है।

देश	प्रति मनुष्य मांस का मासिक खर्च	दस लाख मनुष्यों के पीछे डॉक्टरों की संख्या
जर्मनी	६४ पौण्ड	३५१
फ्रांस	७१ पौण्ड	३८०
इंग्लैंड	११८ पौण्ड	५७८
आस्ट्रेलिया	२७६ पौण्ड	७८०

प्रश्न ८—क्या अन्न फलादि की अपेक्षा मांस में शक्ति अधिक नहीं होती ?

उत्तर —डाक्टरों के मतानुसार बादाम मे ९१ प्रतिशत चना, चावल, घी, मक्खन में ८७ प्रतिशत, गेहूँ, मकई में ८६ प्रतिशत, किशमिश मे ७३ प्रतिशत मलाई मे ६६ प्रतिशत, मांस मे २८ प्रतिशत, अण्डे में २६ प्रतिशत एवं मछली मे १३ प्रतिशत शक्ति मानी जाती है।

डॉक्टर फोर्ड एम डी कहते हैं कि मटर चना आदि धान्यों में २२ से ३० प्रतिशत नाइट्रोजन ५० से ५८ तक मशास्ता एव तीन प्रतिशत के लगभग नमक वाले पदार्थ होते हैं, किन्तु मांस म नाइट्रोजन केवल ८ से ६ प्रतिशत होती है तथा मशास्ता तो नहीं के समान होता है अत मांस मस्तिष्क को नसों को शक्ति नहीं पहुंचा सकता।

युराप के ब्रुसेल्स विश्वविद्यालय आदि में भी मांसाहारी छात्रों की अपेक्षा फल—शाकाहारी छात्र श्रेष्ठ प्रमाणित हुए थे। इन परीक्षाओं मे दस हजार छात्र बैठे थे। उनमे से पाँच हजार को फल शाक अन्न आदि पर तथा पाँच हजार को मांस पर रखा गया था। छः मास बाद जाँच करने पर पता लगा कि शाकाहारी सब बातों मे तेज रहे। मांसाहारियों मे क्रोध-क्रूरता आदि दुर्गुण व शाकाहारियों में दया क्षमा प्रेम आदि सद्गुण विशेष मिले।[1]

प्रश्न ६—जैन शास्त्रों मे भगवान् ने मांस भक्षण के विषय मे विशेष क्या कहा है ?

उत्तर—मांस भक्षण करने से जीव नरक का आयुष्य बांधते हैं।[2] धन्वन्तरिवैद्य ने स्वयं मत्स्य गाय महिष आदि का मांस खाया और रोगियों को खिलाया, अतः वह मर कर छठे नरक मे गया।[3]

नरक में जाने पर मांस खाने वाले को 'तुझे मांस बहुत प्रिय था' ऐसे कहकर परमाधार्मिक देवता उसका मांस काट कर एवं अग्नि मे पकाकर उसे ही खिलाते है।[4]

उपर्युक्त विवेचन पर श्रावकों को गहराई से विचार करके मांस खाने का सर्वथा त्याग कर देना चाहिए।

१—अनशन की झाँकी, पृष्ठ ६४ ६९ के आधार से

२—स्था, ४।४।३७३

३—विपाक० श्रुत० १ अ० ६

४—उत्तरा० १९।७०

अण्ड मांस का पूर्वरूप है, अतः वे भी श्रावक के लिए अभक्ष्य है। अंग्रेजी दवा लेते समय श्रावक को पूरी सावधानी रखनी चाहिए। उनमें मांस अण्डे आदि विशेष रूप में रहते हैं।

प्रश्न ६० —मद्यपान के विषय में श्रावक को क्या करना चाहिए?

उत्तर —मद्यपान बिलकुल न करना चाहिए। प्रभुवचनों के अनुसार मद्य पीने वाला नरक में जाता है एवं उसे उसी के खून एवं चर्बी उबाल कर पिलाए जाते हैं।[1]

मद्यपान करने से बुद्धि नष्ट हो जाती है एवं मनुष्य सन्निपात के रोगीवत् पागल बन जाता है, नग्न होकर नाचने लगता है, बेहोशी में जहाँ कहीं गिरजाता है तथा नहीं कहने की गुप्त बातें भी कह डालता है। महर्षि वेदव्यास ने यहाँ तक कह दिया है कि एक तरफ तो दुनियाँ के सब पाप है और एक तरफ मद्य मांस का पाप है।

मद्यपान का व्यसन इतना बुरा है कि लगने के बाद छूटना बहुत कठिन है। पढ़ने में आया है कि फ्रांस सरकार मद्यपान को रोकने के लिए बीस करोड़ डालर प्रतिवर्ष खर्च करती है[2]। वारसा-पोलेण्ड में तरह चिकित्सालय चालू हैं तथा सोवियत कजाकिस्तान में मद्य पीकर गाड़ी चलाने वाले ड्राइवर को गोली से उड़ा देने तक का विधान है। इतना कुछ करने पर भी फ्रांस मद्यपान में सर्वोपरि है। अनुमानतः फ्रांसनिवासी बीस करोड़ गेलन मद्य प्रतिवर्ष पी जाते हैं। पोलेण्ड में साठ प्रतिशत स्कूल के लड़के मद्य पान करते हैं। संयुक्तराज्य अमेरिका एवं ब्रिटेन में भी प्रायः यही स्थिति है।

१—उत्तरा० १९।७१

२—जैन भारती, ३० मई १९६५ डाक्टर जेठमल भंसाली के लेख से

विदेशों की बात दूर रहो! भारत में भी मद्यपान का व्यसन क्रमशः बढ़ता जा रहा है। जन, वैष्णव एवं वेदान्ती कहलाने वाले लोग भी इसका सेवन करने लग गये हैं। अस्तु! श्रावक को इसका परित्याग करना ही चाहिए।

प्रश्न ११ —श्रावक का खाना पीना आदि व्रत में है अथवा अव्रत में?

उत्तर —श्रावक का खाना, पीना, पहनना, ओढ़ना आदि सभी सांसारिक कार्य अव्रत में हैं। इनसे निरन्तर पाप लगता रहता है, इसीलिये—श्रावक उपभोग-परिभोग सम्बन्धी वस्तुओं का यथाशक्ति त्याग करता है। त्याग प्रायः एक करण-तीन योग से किया जाता है अर्थात् त्याग करने वाला त्यागी हुई वस्तु का मन-वचन काय से स्वयं खान-पान आदि नहीं करता किन्तु गृहस्थ होने के नाते दूसरों को खिलाता—पिलाता है एवं उत्तम क्रियाओं का व्यवहार से अनुमोदन भी करता है।

यह सब करता हुआ भी श्रावक उक्त—कार्यों में धर्म-पुण्य नहीं मानता। क्योंकि ये सभी कार्य अव्रत को पुष्ट करने वाले हैं एवं जहाँ अव्रत की पुष्टि होती है वहाँ कभी धर्म-पुण्य नहीं होता, मात्र सांसारिक व्यवहार है।[1]

प्रश्न १२ —भोग अर्थात् भोजनादि सम्बन्धी उपभोग-परिभोग व्रत तो समझ में आ गया। अब कर्म (व्यापार) सम्बन्धी उक्त व्रत का विवेचन कीजिये?

---

१ बारहव्रत की चौपाई ढाल ६ के आधार से।

उत्तर—उपभोग परिभोग की सामग्री प्राप्त करने के लिए श्रावक को कुछ न कुछ धन्धा तो अवश्य करना ही पड़ता है किन्तु करते समय उसे महाआरम्भ वाले धन्धे से बचने का प्रयत्न करना चाहिए। शास्त्र में इंगालकम्मे आदि पन्द्रह कर्मादान (व्यापार) बतलाए है श्रावक को बन सके तो इनका समूचा त्याग कर देना चाहिये, अन्यथा मर्यादा कर लेनी चाहिये।

कर्मादानों का विवेचन क्रमशः इस प्रकार है—

(१) इंगालकम्मे—अङ्गार कोयले बनाकर उनके धन्धे से आजीविका चलाना अङ्गार कर्म है। इसमें अग्नि का महाआरम्भ होता है। सोनार, ठठेरे, लुहार, कुम्हार हलवाई, भड़भूजे, ईंट-चूने आदि के भट्टे के धन्धे भी इसी कर्म में गिने जाते हैं।

(२) वणकम्मे—जंगल के वृक्षों को काटकर बेचना वन कर्म है। फूल-फल, शाक, घास, धान्य आदि के व्यापार तथा आटा पीसने का व्यापार भी इसी में है।

(३) साडीकम्मे—गाड़ी रथ पालकी, पलंग, किवाड, पाट, बाजोट, आदि बनाकर बेचना शाकट कर्म है।

(४) भाडीकम्मे—गाडी, मोटर जहाज तथा ऊंट घोड़ा, बैल आदि से भाड़ा कमाना भाटक कर्म है। (मकान किराये देना तथा ब्याज पर रुपया देना भी इसी कर्म में गिना जाता है)।

१ उपासकदशा अ० १, भगवती ८।५ तथा आवश्यकनियुक्ति-प्रत्याख्यानाध्ययन।

(५) फोडीकम्मे—हल कुल्हाडी सुरग आदि से पृथ्वी को फोडना एव उससे निकल हुये पत्थर, मिट्टी धातु आदि के पदार्थों का बेचने का धन्धा करना स्फोटन कर्म है।

(६) दन्तवाणिज्जे—हाथीदांत, चास चर्म, मोती, नख, हड्डी, सींग एवं कस्तूरी आदि का (जिनके लिये त्रस जीवों की हिंसा होती है) व्यापार करना दन्तवाणिज्य है।

(७) लक्खवाणिज्जे—लाख मेणसिल, आल, गुली, हरताल, टंकूणा, रावण एव रेशम आदि का व्यापार करना लाक्षावाणिज्य है। लाख आदि को तयार करने में त्रस जीवों की हिंसा बहुत होती है।

(८) रसवाणिज्जे—दूध, दही, घी, तेल, गुड, मधु मक्खन, मदिरा, मास, चर्बी आदि का व्यापार करना रसवाणिज्य है। दूध आदि रस वाले पदार्थों के व्यापार मे चींटी, मक्खी आदि जीवों की अत्यधिक हिंसा है तथा मदिरा मांस गुद जीवों के ही पिण्ड हैं इनका धन्धा अर्थात् कलाल एवं कसाई का धन्धा है।

(९) विसवाणिज्जे—अफीम संखिया आदि विषले पदार्थों का व्यापार करना विषवाणिज्य है। विष शब्द से तलवार, बन्दूक आदि वे सभी शस्त्र भी ग्रहण कर लिये जाते हैं, जिनका प्रयोजन जीवहिंसा करना है।

(१०) केसवाणिज्जे—दास, दासी, ऊंट घोडा, बैल बकरी, भेड आदि केश वाले जीवों का व्यापार करना केश वाणिज्य है।

(११) जंतपीलणकम्मे—तिल, सरसों, ईख आदि को घानी, कोल्हू आदि द्वारा पीलने का व्यापार करना यन्त्रपीडनकर्म है।

(१२) निलक्षणकम्मे—बैल, घोडा आदि पशुओं का नपुंसक बनाने का व्यापार करना निर्लांछनकर्म है। यह बहुत ही घृणित धन्धा है।

(१३) दवग्गिदावणया—भूमि (खेत) को साफ करने के लिए वनों पवनों में आग लगाने का धन्धा करना दवाग्निदापनता कर्म है, इसमें महाहिंसा होती है। बीमा बेच कर दूकान, गोदाम आदि में आग लगाना भी यही कर्म है।

(१४) सरदहतलागपरिसोसणया—खेती आदि करने के लिए झील, द्रह, तालाब आदि को सुखाने का धन्धा करना सरोद्रहतडागपरिशोषणता कर्म है। जलाशयों को खाली करने अथवा सुखाने में जलचर जीवों का अत्यधिक विनाश होता है।

(१५) असईजणपोसणया—आजीविका चलाने के लिये वेश्या नट नटी, भाण्ड आदि को रखना तथा सिंह, कुत्ता बाघ रीछ आदि हिंसक प्राणियों का (सरकस वालों एवं बाजीगरों की तरह) पोषण करना असतीजनपोषणताकर्म है।

ये पन्द्रह कर्मादान व्यापार की दृष्टि से कहे गये हैं एवं श्रावक को इन व्यापारों से आजीविका करने का मर्यादा उपरांत त्याग करना चाहिये। जैसे—आनन्द श्रावक ने ५०० हल उपरान्त खेती का त्याग किया था एवं शकडालपुत्र ने ५०० दुकानें रखकर तदुपरान्त कुम्हार का धन्धा छोड़ा था।

नवां-पुञ्ज

प्रश्न १ —आठवें व्रत का क्या नाम है ?

उत्तर—अनर्थदण्डविरमणव्रत है। इसका अर्थ है अनर्थ हिंसा का त्याग करना। हिंसा दो प्रकार की होती है—अर्थ हिंसा और अनर्थ हिंसा। तन, धन एवं स्वजन-परिवार के लिए की जाने वाली हिंसा अर्थहिंसा है तथा केवल हास्य कौतूहल अविवेक एवं प्रमादवश की जाने वाली हिंसा अनर्थहिंसा है। जैसे—पानी में पत्थर फेंकना, चलते पशु पर प्रहार कर देना, बेमतलब वृक्ष की डाली तोड़ देना एवं बेपरवाही से घी-तेल आदि के बर्तनों को खुला छोड़ देना। अर्थहिंसा को अर्थदण्ड तथा व्यर्थहिंसा को अनर्थ दण्ड कहते हैं। श्रावक को अनर्थदण्ड का त्याग अवश्य करना चाहिये।

प्रश्न २ —अनर्थदण्ड कितने प्रकार का है ?

उत्तर—चार प्रकार का माना गया है—१ अपध्यानचरित २ प्रमादचरित ३ हिंस्र प्रमाद ४ पापकर्मोपदेश।

(१) अपध्यानचरित—आर्तध्यान एवं रौद्रध्यान अपध्यान अर्थात् बुरे ध्यान हैं एवं इनमें निष्प्रयोजन रमण करना पहला अनर्थदण्ड है।

दुःख के समय चिन्ता शोक करना तथा रोना झूरना आर्तध्यान है। श्रावक को विकट वेला में धैर्य रखना चाहिए एवं दुःख को समभाव से सहना चाहिए तथा मृतकों के पीछे प्रथारूप से बिलखने का ... । क्रोध-लोभ आदि के

को मारने पीटने या लूटने आदि का विचार करना या इन कार्यों मे प्रवृत्त होना रौद्रध्यान है। श्रावक को इससे बचते रहना चाहिए।

(२) प्रमाद चरित —प्रमाद का आचरण करना अनर्थदण्ड का दूसरा भेद है। ग्रन्थों मे प्रमाद के पाच भेद भी किए हैं—१ मद्य २ विषय ३ कषाय ४ निद्रा ५ विकथा।[१]

(क) मद्य —मदिरा भाग आदि नशीली चीजों का सेवन करना मद्य प्रमादाचरण है।

(ख) विषय —इन्द्रियो के विषयों मे आसक्त होना यानि विकार पैदा करने वाले गाने सुनना, नाटक देखना, पौष्टिक पदार्थों का भक्षण करना आदि विषय प्रमादाचरण है।

(ग) कषाय —क्रोधादिक पापों से बेभान होकर अनर्थ कर डालना कषाय प्रमादाचरण है।

(घ) निद्रा —नित्य करने योग्य धार्मिक क्रियाओ की उपेक्षा करते हुए वक्त बेवक्त सो जाना निद्रा प्रमादाचरण है।

(ङ) विकथा —संयम मे बाधक एव चारित्र विरुद्ध कथा को विकथा कहते हैं। विकथाएँ चार हैं[२]—१ स्त्रीकथा २ भक्तकथा ३ देश कथा ४ राजकथा।

(१) स्त्रियों की जाति कुल रूप तथा वेश की अपेक्षा से प्रशसा या निन्दा करना स्त्रीकथा है। (२) भोजन का निर्माण भेद प्रभेद,

१ पचाशक प्रथम गाथा २३।

२ स्था० ४।२।२४२।

आरम्भ का प्रमाण तथा धन का प्रमाण बतलाना भक्तकथा है। (३) देश विशेष के भोजन की विधि विधान, धान्योत्पत्ति एवं कूप-वापी आदि, गम्य अगम्य स्त्री तथा वेष भूषा का निन्दा प्रशंसात्मक वर्णन करना देशकथा है। तथा (४) राजा के आगमन, प्रयाण बल-वाहन एवं खजाने की निन्दा-प्रशंसात्मक बात करना राजकथा है। इन पाँचों प्रकारों के प्रमादों से श्रावक को बचना चाहिए।

(३) हिंस्रप्रदान —तलवार-बन्दूक आदि शस्त्र, जहर एवं अग्नि आदि (आगे विशेष हिंसा करने वाली वस्तुएं) दूसरे को देना तीसरा अनर्थदण्ड है।

(४) पापकर्मोपदेश —खेती करो। व्यापार करो। मकान बनाओ। चोरी करो। मछलियाँ पकड़ो। राजविद्रोह करो आदि आदि पाप के कार्यों का उपदेश देना चौथा अनर्थदण्ड है।

यद्यपि ये चारों प्रकार के अनर्थदण्ड प्राणिमात्र के लिए त्यागने योग्य हैं फिर भी गृहस्थावास की विवशता के कारण श्रावक इनका पूर्णतया त्याग नहीं कर सकता। अतः वह आठ आगार (छूट) उपरान्त दो करण, तीन योग से त्याग करता है।

प्रश्न ३ —आठ आगार कौन-कौन से हैं ?

उत्तर—१ अपने सुख-सुविधा के लिए २ माता पिता, पुत्र-पुत्री, भाई बहिन आदि ज्ञाति-स्वजनों के लिए ३ घर के लिए ४ परिवार के लिए ५ मित्रों के लिए ६ नाग देवता के लिए ७ भूत प्रेतादि के लिए ८ एवं यक्ष के लिए।

इन आठों के कारण से यदि उपयुक्त अपध्यान चरित आदि अनर्थदण्ड का सेवन करना पड़े तो श्रावक इनका आगार रखता है।[1]

प्रश्न ४ —आठवें व्रत के अतिचार समझाइए ?

उत्तर—पांच अतिचार हैं—१ कंदर्प २ कौत्कुच्य ३ मौखर्य ४ संयुक्ताधिकरण ५ उपभोग-परिभोगातिरिक्तता।

(१) कामवासना प्रबल करने वाले एवं मोह उत्पन्न करने वाले शब्दों का हास्य या व्यंग्य में दूसरों के लिए उपयोग करना कंदर्प अतिचार है। स्त्री-पुरुषों के हाव भाव, विलास विभ्रम, शृंगार एवं गुह्याग उपांगों का वर्णन करना तथा कविता आदि के रूप में लिखना भी इसी के अन्तर्गत है।

(२) आंख, नाक, मुंह, भृकुटि आदि अपने अंगों को विकृत बनाकर भांड या विदूषक की तरह लोगों को हँसाना एवं होली आदि पर्वों पर बीभत्स नृत्य गान आदि करना कौत्कुच्य—अतिचार है।

(३) बिना कारण ही अधिक बोलना, असंगत बातें करना एवं जिससे सुनने वाला शत्रु बन जाय—ऐसे शब्दों का व्यवहार करना मौखर्य अतिचार है।

(४) ऊखल मूसल चक्की, सिला-लोढ़ा, हल फाला एवं धनुष-बाण आदि हिंसाकारक वस्तुओं को तैयार करके रखना संयुक्ताधिकरण अतिचार है। तत्त्व यह है कि सज्जित शस्त्र तत्काल हिंसा के कारण बन सकते हैं।

---

१ सूत्र श्रु० २ अ० २ में इन आठों कारणों से किया गया पाप अर्थदण्ड कहा है।

(५) उपभोग-परिभोग व्रत स्वीकार करते समय जो वस्तुए मर्यादा में रखी गई है उनमें अत्यधिक आसक्त रहना यानि विशेष आनन्द या स्वाद लेने के लिए उनका बार-बार उपयोग करना उपभोग परिभोगातिरिक्तता भी—अतिचार है। जैसे—भूख न होने पर स्वाद के लिए बार बार खाते रहना, आवश्यकता न होने पर भी पुनःपुन स्नान करना एव पोशाक बदलना।

श्रावक को इन पाचों अतिचारों से दूर रहकर आठवें व्रत की आराधना करनी चाहिए। यह तीन गुण व्रतों का सक्षिप्त विवरण सम्पन्न हुआ।

दशवां-पुञ्ज

प्रश्न १—शिक्षाव्रत का क्या रहस्य है ?

उत्तर—जिसतरह मन्दिर की चोटी पर कलश होता है एवं मस्तक के ऊपर मुकुट होता है, उसी प्रकार अणुव्रतों-गुणव्रतों के ऊपर कलश मुकुटवत् शोभा देने वाले सामायिकादि चार व्रत शिक्षाव्रत कहलाते है ऐसा श्री भिक्षु स्वामी का मन्तव्य है। हरिभद्रसूरि ने कहा है—साधु धर्माभ्यास शिक्षा श्रेष्ठधर्म के अभ्यास को शिक्षा कहते है। तत्व यह निकला कि सामायिकादि चार व्रतों मे धर्म का विशेष अभ्यास किया जाता है, अत इनका नाम शिक्षाव्रत है

अणुव्रत—गुणव्रत यावज्जीवन के लिए होते हैं, किन्तु शिक्षाव्रतों के प्रत्याख्यान का समय विभिन्न प्रकार का है। जैसे—सामायिक का समय एक मुहूर्त है देशावकाशिक व्रत का समय धारने वाले की इच्छानुसार है एवं पौषध का समय दिन रात है।

प्रश्न २ —सामायिक का अर्थ समझाइए ?

उत्तर—प्राचीन जैनाचार्यों (हरिभद्र मलयगिरि आदि) ने भिन्न भिन्न व्युत्पत्तियों द्वारा सामायिक का अर्थ इस प्रकार समझाया है।

(१) "समस्य-रागद्वेषान्तरालवर्तितया मध्यस्थस्य आय लाभ समायः, समाय एव सामायिकम्।" राग द्वेष में मध्यस्थ रहना सम है एवं समरूप मध्यस्थभाव का साधक को जो आय-लाभ होता है, वह सामायिक है।

(२) "समानिज्ञान दर्शन चारित्राणि तेषु अयन गमन समाय, स एव सामायिकम्" मोक्ष मार्ग के साधन ज्ञान, दर्शन चारित्र सम कहलाते हैं, उनमें अयन—प्रवृत्ति करना सामायिक है।

(३) सर्व जीवेषु मैत्री साम साम्नो आय लाभ समाय स एव सामायिकम्'—सब जीवों पर मैत्री भाव रखने को साम कहते हैं, अतः साम का लाभ जिसमें हो वह सामायिक है।

(४) 'सम, सावद्ययोग-परिहार निरवद्ययोगानुष्ठानरूप जीवपरिणाम तस्य आय लाभ समाय स एव सामायिकम्" सावद्य (पाप) कार्यों का परित्याग एवं निरवद्य कार्यों (अहिंसा-समता

आदि) का आचरण ये दो जीवात्मा के [illegible] हैं। उक्त सम की जिसके द्वारा प्राप्ति होती है [illegible] है।

(५) "समये कर्तव्य सामायिकम्" [illegible] आवश्यक कार्य को सामायिक कहते हैं—[illegible] लिए नित्य प्रति कर्तव्य की भावना [illegible]।

ऊपर शब्दशास्त्र के अनुसार [illegible] व्युत्पत्तियाँ की हैं, किन्तु सभी का [illegible] में रमण करना है।

प्रश्न ३ सामायिक करने की विधि [illegible]

उत्तर मुहपत्ति-पूजणी आदि [illegible] आसन बिछा कर, मुहपत्ति बांधकर एवं फिर पूर्व [illegible] (ईशान कोण) की तरफ मुह करके श्रावक तीन [illegible] का पाठ बोलकर महाविदेह-क्षेत्र को पुष्कलावती [illegible] श्री सीमंधर भगवान को वन्दना करते हैं और [illegible] सामायिक [illegible] की आज्ञा लेते हैं, फिर निम्न [illegible] का [illegible] बोलते हैं—

करेमि भंते ! सामाइयं [illegible] (मुहुत्त एगं) पज्जुवासामि, [illegible] न करेमि [illegible] मणसा वयसा कायसा तस्स भंते [illegible] अप्पाणं वोसिरामि।

भावार्थ—(श्रावक [illegible] ग्रहण करता हूँ। सामायिक [illegible]

तक दो करण तीन योग से सावद्य योग (पाप के कार्यों) का त्याग करता हूँ अर्थात् मन वचन काया के योग से न तो मैं स्वयं सावद्य कार्य करूँगा और न दूसरों के पास कराऊँगा। इतना ही नहीं सामायिक धारण करने से पहले जो सावद्य अनुष्ठान किये हैं उन सब से पीछा हटाता हूँ एवं उनकी आत्मसाक्षी से निन्दा करता हूँ, गुरु साक्षी से गर्हा घृणा करता हूँ एवं आत्मा को पापों से दूर करता हूँ।

इस पाठ से श्रावक अठारह पाप एवं पाँच आस्रव-द्वारों का एक मुहूर्त के लिए दो करण-तीन योग से त्याग करता है। यद्यपि सामायिक के मूलपाठ में काल का उल्लेख नहीं है किन्तु प्राचीन जैनाचार्यों ने नवकारसी की तरह परम्परा से इसका कालमान भी एक मुहूर्त ही माना है [१]।

---

१ (क) इह सावद्ययोगप्रत्याख्यानरूपस्य सामायिकस्य मुहूर्तं मानता सिद्धा तेऽनुक्ताऽपिज्ञातव्या प्रत्याख्यान कालस्य जघन्यतोऽपि मुहूर्तमात्रत्वा नमस्कारसहित प्रत्याख्यान वदिति।

—जिनलाभसूरि, आत्म प्रबोध।

(ख) त्यक्तार्त रौद्रध्यानस्य, त्यक्तसावद्यकर्मण।
मुहूर्त समता या तां, विदु सामायिक-व्रतम्॥

—योगशास्त्र, प्रथम प्रकाश

(ग) सावद्यकर्म मुक्तस्य, दुर्ध्यानरहितस्य च।
समभावो मुहूर्त तद्, व्रत सामायिकाह्वयम॥

—धर्मसंग्रह अधिकार २

प्रश्न ४ —सामायिक व्रत ग्रहण करने के बाद क्या करना चाहिए ?

उत्तर—चउवीसत्थव अवश्य करना चाहिए। चउवीसत्थव में इच्छामि पडिक्कमिउं, तस्स उत्तरी-लोगस्स नमोत्थुण, ये चार पाटियाँ बोली जाती हैं। पहली पाटी मे गमनागमन करते समय जान-अनजान मे हुई जीव हिंसा की आलोचना है। इसमे १८ लाख २४ हजार १२० मिच्छामि दुक्कड लिये जाते हैं [1]। दूसरी पाटी मे कायोत्सर्ग सम्बन्धी आगार हैं। तीसरी पाटी में चौवीस भगवान् की स्तुति है और चौथी पाटी मे अरिहन्त भगवान को नमस्कार किया गया है।

विधि पूर्वक चउवीसत्थव करके पद्मासन सिद्धासन आदि किसी एक आसन से निश्चल होकर देव, गुरु, धर्म का भजन स्मरण करना चाहिये। पाँचो प्रकार का स्वाध्याय करना चाहिये। आज्ञाविचयादि एवं पिण्डस्थादि ध्यान करना चाहिए [2]। अठारह पापों मे से कोई भी पाप न लग जाय इसकी पूरी सावधानी रखनी चाहिए। अठारह पाप ये हैं—

---

१ जीवों के ५६३ भेद हैं। उन्हें अभिहया आदि १० पदों से गुणने पर ५६३० हुये। हिंसा राग-द्वेष से होती है अतः दोगुना किया ११२६० हुये। हिंसा तीन करण तीन योग से होती है अतः फिर नव से गुणा किया —१ लाख १३४० हुये। आलोचना तीन काल सम्बन्धी होती है अतः फिर तीन गुणा किया—३ लाख ४ हजार २० हुये। आलोचना अरिहन्त, सिद्ध आचार्य, उपाध्याय गुरु और आत्मा—इन छहों की साक्षी से की जाती है इसलिए फिर छः गुणे किये तब १८ लाख २४ हजार १२० हुये।

२ मनोनिग्रह के दो मार्ग, पृष्ठ २३ एवं ६० में इन ध्यानों का वर्णन है।

(१) प्राणातिपात जीवहिंसा (२) मृषावाद असत्य वचन (३) अदत्तादान-चोरी (४) मैथुन अब्रह्मचर्य (५) परिग्रह ममता (६) क्रोध (७) मान (८) माया (९) लोभ (१०) राग (११) द्वेष (१२) कलह (१३) अभ्याख्यान झूठा कलंक लगाना (१४) पैशुन्य चुगली खाना (१५) परपरिवाद पराई निन्दा (१६) रति अरति—असंयम मे अनुराग एव सयम मे उदासीनता (१७) मायामृषावाद कपट सहित झूठ बोलना (१८) मिथ्या दर्शनशल्य विपरीत श्रद्धान।

प्रश्न ५ —क्या सामायिक में कोट कमीज बनियान, पगडी आदि रखे जा सकते हैं ?

उत्तर—वास्तव मे सामायिक कुछ अशों मे साधुपना है, अत इसमे प्राय साधु की तरह ही मुहपति, चादर, पूजणी आदि रखे जाते हैं एवं कोट, कमीज आदि पहनने की परम्परागत मनाही है।

आजकल कई श्रावक सामायिक मे बनियान, मोजे आदि रखने लगे है एवं टोकने पर कहते हैं कि यदि हमे उक्त वस्त्र रखना नही कल्पता तो स्त्रियों को कैसे कल्पता है ? समाधान इस प्रकार है—स्त्रीलिंग होने से उनका वस्त्र उतार कर पुरुषों की तरह खुला बैठना व्यवहार में उचित नहीं लगता, अत वे मूल वेष मे सामायिक कर सकती है। शास्त्र मे भी साध्वियों को जांघिया एवं कंचुकी पहनने की विशेष आज्ञा है किन्तु साधुओं को (कोट, कमीज आदिवत्) सिला हुआ कपडा पहनने का बिल्कुल निषेध है। अत स्त्रियों का हेतु लगा कर पुरुषों को परम्परागत मर्यादा का भंग न करना चाहिए।

प्रश्न ६—क्या सामायिक का द्रव्य, क्षेत्र काल एव भाव से भी कुछ विशेष सम्बन्ध है ?

उत्तर—सम्बन्ध हो नही सामायिक करने वाले को द्रव्यादि की शुद्धि का ध्यान रखना परम आवश्यक है। आजकल कई श्रावकों को मुहपत्ति बाधने मे अरुचि होती है किन्तु उन्हे गर्भावास की स्थिति का स्मरण करके अरुचि से न घबराना चाहिए।

द्रव्य से —सामायिक करनेवाले को सब से पहले द्रव्य शुद्धि पर गौर करना चाहिए। यद्यपि निश्चय दृष्टि से सामायिक ही द्रव्य है, फिर भी व्यवहार दृष्टि से सामायिक के समय उपयोगी उपकरण भी द्रव्य कहलाते हैं। सामायिक मे माला मुहपत्ति पूजनी आसन-चादर आदि द्रव्य सादगी से सम्पन्न होने चाहिए।

क्षेत्र से—यद्यपि सामायिक सभी क्षेत्रों मे की जा सकती है, फिर भी एकान्त शुद्ध एवं निर्विकार स्थान मे अच्छी होती है। बहुत सी वृद्धा-बहनें रसोईघर आदि के पास बैठकर सामायिकें भी कर लेती है एव घर तथा बच्चों की सार सम्भाल भी कर लेती है। सम्भवत इसीलिए यह कहावत चली है—सामायिक में समताभाव गुड की भेली कुत्ता खाय। वास्तव में ऐसी सामायिकें द्रव्य-सामायिकें हैं उनसे आत्म-कल्याण असम्भव है।

काल से—सामायिक का समय ऐसा रखना चाहिए कि जिस समय सामायिक मे बाधा डालने वाली अडचनों की सम्भावना न हो। कई बहनें अगला पिछला विचार किए विना सामायिक कर लेती हैं, फिर ब... निकट आकर रोने लगते हैं एव गोद

बैठते हैं। कई भाई दूकान की चाबियाँ लेकर सामायिक में बैठ जाते हैं। पीछे नौकर आकर चाबियाँ मांगता है एवं सेठजी या तो चाबियों को दूर रखकर वोसिरे वोसिरे कर देते हैं या स्वयं मुँह फिरा लेते हैं और नौकर कमर में बंधी हुई चाबियों को खोलकर ले जाता है। ऐसा करने से सामायिक में दोष लगता है।

यद्यपि सामायिक चाहे जब हो सकती है फिर भी प्रातःकाल का शान्त वातावरण सर्वोत्तम माना गया है।

भाव से—द्रव्य क्षेत्र काल शुद्ध होने पर भी भाव शुद्धि परमावश्यक है, अतः सामायिक के समय पूरी सजगता रखनी चाहिए कि कोई भी दुर्भावना मन में न आ जाय। वास्तव में साधक को सामायिक में एक क्षण भी निकम्मा न रहना चाहिए। ध्यान स्वाध्याय व्याख्यान श्रवण आदि कुछ न कुछ सत्क्रिया चालू ही रखनी चाहिए। रात को दो-तीन बजे उठकर हाथ में माला एवं मोतों का सहारा लेकर मोची हुई आँखों में सूर्योदय तक चार पाँच सामायिक करके मन में खुशी मानने वाले श्रावक श्राविकाओं को जरा ध्यान देना चाहिए कि—ये सामायिकें केवल नाममात्र की हुई या कुछ काम की भी?

प्रश्न ७—सामायिक में आजकल लोगों की रुचि कम क्यों है?

उत्तर—अरुचि का पहला कारण है सामायिक के महत्त्व को न समझना और दूसरा कारण है बड़ों-बूढ़ों का नियमानुसार सामायिक न करना एवं प्रतिदिन पाँच-सात सामायिक करके भी अपनी प्रकृति एवं आचरणों को न सुधारना।

कई भाई बहिनें प्राचीन परम्परा के अनुसार सामायिक तो कर

लेते हैं लेकिन सावद्य निरवद्य भाषा का बिल्कुल ख्याल नहीं रखते एव दुनियाँ की बातों मे पड जाते है। कई किसी के माँ बापो को कोसते हैं तो कई किसी के सास-ससुर एव बहू-बेटियों को। कई ब्याह सगाई एव दूकानदारी की कहानी कहने लगते है तो कई लड़ाई झगडे एव मामले मुकद्मे की। वास्तव मे जिन विकथाओ की भगवान ने मनाही की हैं, वे सारी की सारी सामायिकों म चलती रहती हैं। दूसरी बात—

तीस तीस वर्षों से लगातार सामायिक करके सूत्र सुनने वाले कई श्रावक लडने झगडने मे, छल कपट करने मे, झूठी गवाही भरने मे लोभवश गरीबों का खून चूसने में एव नही करने योग्य काले काम करने मे सबसे आगे रहते हैं।

ऐसी दशा में उनके बेटे-पोते सारा दोष सामायिकों पर मढते हुए कहते हैं—देखो। इन अधिक सामायिक करने वाले श्रावकों के चरित्र। इनसे तो हम लाख दर्जे अच्छे है। चाहे कभी सामायिक नही करते किन्तु ऐसे अन्याय, अत्याचार भी तो नही करते।

यद्यपि नवयुवकों का यह कहना कुछ अशों में सत्य है लेकिन ऐसे कह कर उन्हें सामायिक से विमुख न होकर स्वय शुद्ध सामायिक करके वृद्धों के सामने आदर्श उपस्थित करना चाहिए एव अपने वृद्धों को विनम्रता से समझाकर रास्ते पर लाना चाहिए।

प्रश्न ८— सामायिक में मन स्थिर क्यों नहीं रहता ?

उत्तर—इसका मुख्य कारण कलुषित वातावरण है। बहू से लड़ती लड़ती सास सामायिक कर लेती है, बाला व्यापार करता-

करता व्यापारी सामायिक मे बैठ जाता है, रिश्वत खाता खाता राज कर्मचारी मुँह बाँध लेता है। इसी प्रकार हाय धन हाय धन करता हुआ श्रीमन्त सेठ सामायिक का वेष पहन लेता है—अब ये सब कहते है, क्या करें, मन नही टिकता। टिकगा भी कसे, क्रोध आदि की मदिरा पीकर जा आए हो। वह तो अपनी लहर अवश्य लाएगी ही। अत शुद्ध सामायिक, भजन, स्मरण एव ध्यान करने की उमग रखने वाले बन्धुओं को दैनिक व्यवहार शुद्ध रखने का अधिकाधिक प्रयत्न करना चाहिए।

प्रश्न ६—सामायिक किसलिए करनी चाहिए ?

उत्तर—मात्र आत्म कल्याण के लिये सामायिक करने की प्रभु आज्ञा है। इसके द्वारा धन, राज्य, स्वर्ग आदि की इच्छा कभी न करनी चाहिए। भगवान् ने सामायिक का फल सावद्ययोगों से निवृत्त होना कहा है[1]। सावद्ययोग की निवृत्तिसे आते हुए कर्म रुकते हैं फिर शुभ भावों की प्रवृत्ति होने से पापकर्मों की निर्जरा होती है एव पुण्यों का बन्ध होता है फलस्वरूप स्वर्गादि के सुख मिलजाते हैं। सम्भवत इसी आधार पर ग्रन्थकारों ने कल्पना की है कि दो घड़ी शुद्ध सामायिक करने से जीव ६२ करोड ५९ लाख २५ हजार ६२५६ पल्योपम का देवायु बाधता है, अर्थात् इतने लम्बे काल के स्वर्ग के सुखों की प्राप्ति होती है, यह एक सामान्य कल्पना है। सामायिक से तो अनन्त आत्मिक सुख भी मिल सकते हैं[2]।

---

१ उत्तरा २९।८

२ जनतत्त्वप्रकाश (गुजराती) प्रकरण ५, पृष्ठ ४५६ के आधार से।

प्रश्न १०—लड्डू या रुपया-पैसा देकर सामायिक करवाई जाय तो?

उत्तर—वास्तव मे सामायिक आत्मा की शान्त एव स्थिर अवस्था है। उसे त्यागी वैरागी व्यक्ति ही प्राप्त कर सकते हैं लड्डू एव धन के लोभी नही। धन या लड्डू देकर सामायिक की दलाली का धर्म कमाने के इच्छुक धनी-श्रावकों को श्रेणिक और पूणिया श्रावक की कहानी याद कर लेनी चाहिए।

प्रश्न ११—सामायिक के समय जो वस्त्र आदि रखे जाते हैं वे व्रत मे हैं या अव्रत मे?

उत्तर—भगवती ३।१ के अनुसार सामायिक करते समय श्रावक का शरीर भी अधिकरण (छ काय का शस्त्र) है एव अव्रत मे है, तो फिर उसकी सुरक्षा के लिए रखे गए उपकरण-वस्त्रादि व्रत मे कैसे हो सकते हैं? (चूंकि वे अव्रत मे ही हैं) अत उनका जितना सकोच किया जाय उतना ही अच्छा है।

प्रश्न १२—क्या सामायिक तीन करण तीन योग से हो सकती है?

उत्तर—व्यवहार रूप मे स्थूल हिंसा असत्य आदि की अपेक्षा से हो सकती है[1] निश्चित रूप से नहीं। क्योंकि श्रावक सामायिक करते समय भी बैंक आदि मे जमा रकम का ब्याज लेता है पुत्रादि के जन्म मरण पर हर्ष शोक का अनुभव करता है, अत आम तौर पर दो करण-तीन योग से अर्थात् छ कोटि से ही सामायिक की जाती है।

यद्यपि त्याग छ कोटि से किये जाते हैं किन्तु (तेरापथ में) उनका पालन आठ कोटि से करने की परम्परा है, केवल मन का अनुमोदन

१ विशेषावश्यक भाष्य गाथा २६८६

खुला रहता है। जैन-श्वेताम्बर स्थानकवासियों मे कई श्रावक आठ कोटि पच्चक्खाण करते है और कई छ कोटि। श्रावको के पीछे साधु भी आठ कोटि छ कोटि कहलाने लगे है। दरियापरी सम्प्रदाय आठ कोटि है एव शेष प्राय छ कोटि है।

प्रश्न १३—सामायिक के कितने अतिचार है ?

उत्तर—पाच अतिचार कहे हैं—[1]

(१) मनादुष्प्रणिधान—मन से सावद्य-पाप युक्त विचार करना।

(२) वचन दुष्प्रणिधान—सावद्य वचन बोलना (लडाई झगडा करना, गृहस्थ को आओ चले जाओ, उठो बैठो, सो जाओ आदि आदि कहना तथा खुले मुँह बोलना ये सभी सावद्य वचन है)।

(३) कायदुष्प्रणिधान—काया से सावद्य प्रवृत्ति करना (बिना देखे, बिना पूजे शरीर को सकोचना या फलाना, बच्चों का गोद में लेना एव स्तनपान कराना, खान-पान करना या कराना, सचित्त पृथ्वी पानी आदि का सघट्टा करना आदि सभी प्रवृत्तियाँ सावद्य है।)

इन तीनो अतिचारो को विस्तार से समझाने के लिए ग्रन्थों में १० मन के १० वचन के १२ काया के ऐसे सामायिक के ३२ दोषों की कल्पना भी की गई है [2] मन के दस दोष यथा—

(१) सामायिक के स्वरूप को न समझकर केवल मुह बाध कर बैठ जाना एव समय असमय का ख्याल न रखना अविवेक-दोष है।

---

१ उपासक दशा अ १

२ (क) अविवेक जसो कित्ती लाभत्थी गव्वभयनियाणत्थी।

सतय रोस अविणओ, अबहुमाणए दोसा भाणियव्वा॥

(२) सामायिक करने से मेरी यश कीर्ति होगी, लोग धर्मात्मा कहेंगे एवं सत्कार करेंगे ऐसी भावना से सामायिक करना यश कीर्ति दोष है।

(३) सामायिक करने से व्यापार में अच्छा लाभ मिलेगा, नौकरी लग जाएगी, विवाह जल्दी हो जाएगा रोग मिट जाएगा इस प्रकार भौतिक लाभ की इच्छा से सामायिक करना लाभाय-दोष है।

(४) मैं बहुत सामायिक करने वाला हूं, मेरे तुल्य नियमित एवं शुद्ध सामायिक कौन कर सकता है? ऐसे सामायिक के विषय में अभिमान करना गर्व दोष है।

(५) राज्य, पंच या लेनदार आदि से बचने के लिए अथवा लोकनिन्दा के भय से मुह बांध कर बठ जाना भय दोष है।

(६) सामायिक के बदले में राज्यऋद्धि एवं स्वर्ग आदि की याचना करना निदान दोष है।

(७) मैं सामायिक करता हू लेकिन मुझे इसका फल मिलेगा या नहीं—ऐसा संदेह करना संशय दोष है।

ख—कुवयण सहसाकारे, सछन्द सखेव कलह च।
विगहा विहासोऽसुद्ध, निरवेक्खो मुणमुणा दस दोसा॥

ग—कुआसणं चलासणं चलदिट्ठी,
सावज्जकिरिया लबणा कुचण पसारणं च।
आलस मोडन मल - विमासणं
निद्दा वेयावच्चति बारस कायदोसा।

(सामायिक सूत्र, पृष्ठ ६१ ६४)

(८) लड़ाई झगड़ा होने पर रूठ कर सामायिक मे बैठ जाना रोष दोष है।

(९) सामायिक के प्रति आदर भाव न रखना अथवा सामायिक मे देव-गुरु-धर्म की असातना करना अविनय दोष है।

(१०) मन न होने पर भी किसी के दबाव से बेगार समझ कर सामायिक करना अबहुमान दोष है।

वचन के दस दोष—

(१) सामायिक मे कुत्सित अश्लील वचनों (म म भ आदि) का प्रयोग करना कुवचन दोष है।

(२) बिना विचारे हानिकारक, सत्य को भग करने वाले एव अप्रतीतिकारक वचन बोलना सहसाकार-दोष है।

(३) सामायिक म कामवृद्धि करने वाले गदे गीतादि गाना एवं गन्दी बातें करना स्वच्छन्द दोष है।

(४) सामायिक के पाठ को सक्षेप करके बोलना सक्षेप दोष है।

(५) सामायिक मे कलह उत्पन्न करने वाले वचन बोलना कलह-दोष है।

(६) बिना किसी अच्छे उद्देश्य के अर्थात् केवल मनोरंजन के लिये स्त्रीकथा, भक्तकथा, देशकथा राजकथा कहने लग जाना विकथा दोष है।

(७) सामायिक में हँसी-मजाक करना या व्यंग्यपूर्ण वचन बोलना

(८) सामायिक का पाठ (शुद्धि का ध्यान रखे बिना) जल्दी मे अशुद्ध बोलना अशुद्ध-दोष है ।

(९) सामायिक के नियमो की परवाह न करके चाहे सो बोल जाना निरपेक्ष-दोष है ।

(१०) सामायिक के पाठ का शुद्ध उच्चारण न करके गुनगुनाते बोलना मुम्मन दोष है ।

काया के बारह दोष—

(१) सामायिक में गुरु आदि के सामने अभिमान के आसन से (पर पर पैर चढ़ा कर) बैठना कुआसन दोष है ।

पद्मासन, सिद्धासन, सुखासन आदि आसन सामायिक के लिए उपयुक्त हैं ।

(२) एक आसन मे स्थिर न रह कर बार बार आसन बदलना, चलासन दोष है । जहाँ तक हो सके सामायिक स्थिर आसन से करनी चाहिए ।

(३) दृष्टि को स्थिर न रख कर इधर उधर आँखें फाड़ना चलदृष्टि दोष है ।

(४) शरीर से सावद्यकार्य करना या करवाना सावद्यक्रिया दोष है । बच्चों को गोद में लेना स्तनपान कराना आदि कार्य इसी दोष के अन्तगत हैं ।

(५) वृद्धावस्था या रोगादि किसी विशेष कारण के बिना दीवार आदि का सहारा लेकर बैठना आलम्बन दोष है। ऐसे बैठने से नींद आने की सभावना रहती है ।

(६) बिना किसी विशेष प्रयोजन के हाथों-परों को सिकोडना-पसारना आकुञ्चन प्रसारण दोष है।

(७) सामायिक मे बठे हुए आलस्य करना, अगडाई लेना आलस्य-दोष है।

(८) सामायिक मे हाथों परो की अगुलियों को चटकाना (कडका निकालना) मोडन दोष है।

(९) सामायिक मे शरीर का मैल उतारना मल दोष है।

(१०) सामायिक के समय गाल पर हाथ लगाकर शोक-सतप्तवत् बठना तथा बिना पूजे शरीर को खुजलाना एव रात के समय इधर उधर फिरना विभासन दोष है।

(११) सामायिक मे नींद लेना-ऊघना निद्रा-दोष है।

(१२) सामायिक मे वैयावच्च करना या कराना वयावृत्त्य दोष है। कई आचार्यों ने इस स्थान पर कम्पन-दोष माना है। उसका अथ स्वाध्याय करते समय इधर उधर घूमना या हिलना अथवा शीत आदि के कारण कांपना है।

यद्यपि मूल आगमों मे सामायिक के ३२ दोषों का वणन दृष्टिगोचर नहीं होता। वहाँ मात्र मन वचन काया से सावद्य कार्य करने का निषेध है। इस निषेध म सब दोषों का समावेश हो जाता है। दोषों के ३२ भेद पूर्वाचार्यों ने साधारण बुद्धिवाले मनुष्यों को समझाने के लिये किए हैं। अपेक्षाभेद से इनकी सख्या घटाई बढाई भी जा सकती है। अस्तु! सामायिक के तीन अतिचारों का विवेचन हो गया।

(४) सामायिक स्मृति—अकरणता—मैंने सामायिक की है इस बात को भूल जाना या कितनी सामायिकें की हैं—यह विस्मृत कर देना अथवा सामायिक करना (प्रतिज्ञापाठ बोलना) ही भूल जाना (इस अतिचार का मतलब सामायिक की सार-सम्भाल न रखना है)।

(५) सामायिक अनवस्थित करणता—सामायिक ले कर सामायिक का समय पूरा हुआ या नहीं ऐसे बार बार विचार करना घड़ी आदि देखना या समय समाप्त होने से पहले ही उठ जाना।

इन सभी अतिचारों-दोषों से बचते हुए श्रावक को शुद्ध सामायिक करनी चाहिए। सामायिक के समय श्रावक साधु के समान हो जाता है[1] यह जो कहा गया है वह निरतिचार सामायिक करने की अपेक्षा से है न कि मात्र मुंह बांध कर बठ जाने की अपेक्षा से।
यद्यपि ऐसी शुद्ध सामायिक विरल ही कर सकते है, फिर भी असावधानीवश होने वाली त्रुटियों से घबराकर सामायिक न करने की भावना चित्त में न लानी चाहिये किन्तु ज्यादा से ज्यादा शुद्ध करने का लक्ष्य बना कर सजग रहने का प्रयत्न करना चाहिए।

अबोध बच्चों को जो सामायिकें करवाई जाती हैं व वास्तव में द्रव्य सामायिक ही हैं फिर भी सामायिक के संस्कार डालने की दृष्टि से उन्हें प्रेरणा दी जाती है।

---

१ आवश्यक निर्युक्ति ८००१ तथा विशेषावश्यकभाष्य २६६०।

ग्यारहवाँ पुञ्ज

(१) प्रश्न—दसवाँ व्रत समझाइए ?

उत्तर—छठे व्रत मे जो दिशाओं का परिमाण किया गया है उसका तथा सब व्रतो का सकोच करना दसवाँ देशावकाशिक व्रत है। इस व्रत मे दिशाओं का सकोच कर लेने पर मर्यादि से बाहर की दिशाओं मे आकर हिंसा झूठ, चोरी, अब्रह्मचर्य परिग्रह आदि आस्रवो का सेवन न करना चाहिए तथा मर्यादित दिशाओं म जितने द्रव्यों की (सातवें व्रत मे) मर्यादा की है उसके उपरान्त द्रव्यों का उपभोग न करना चाहिए[१]। यह व्रत दो करण तीन योग से किया जाता है। इस व्रत को साधना करने के लिये श्रावक को प्रतिदिन चौदह नियम धारण करने चाहिए।

(२)प्रश्न—चौदह नियम कौन कौन से है और किस तरह धारे जाते है ?

उत्तर—चौदह नियम धारने वालों को—यह निम्नलिखित एक गाथा अवश्य मान कर लेनी चाहिए। यथा—सचित्त दव्व विगइ, पन्नी तबोल वत्थ कुसुमेसु। वाहण सयण विलेवण बभ दिसिन्हाण भत्तेसु[२]। इस गाथा मे चौदह नियमों के नाम हैं। विवेचन नीचे पढिए —

१ सचित्त—जीव सहित वस्तु को सचित्त कहते हैं। इस नियम

१ हरिभद्रीय—आवश्यक प्रत्याख्यानाध्ययन पृष्ठ ८३०।

२ धर्म सग्रह—अधिकार ३।

मे खाने-पीने के काम मे आनेवाली सचित्त वस्तुओं की मर्यादा करनी चाहिए। जसे आज मं इतनी ( ) सख्या से अधिक सचित्त वस्तुएँ न खाऊँगा-पीऊँगा एव अमुक परिमाण से अधिक सचित्त पृथ्वी-पानी अग्निवायु वनस्पति का आरम्भ न करूँगा।

(२) द्रव्य—इस नियम मे खाने-पीने के द्रव्यों का परिमाण करना चाहिए। जैसे आज मं इतने ( ) द्रव्यों से अधिक द्रव्य उपयोग मे नही लूगा।

(३) विगय—इस नियम मे विगय की मर्यादा करनी चाहिए। जसे—आज मं इतने ( ) विगय से अधिक न लगाऊँगा।

(४) पन्नी—इसमे जूने खडाऊँ आदि की मर्यादा की जाती है। जस—म आज इतने ( ) जोडों से अधिक जूते आदि न पहनूगा।

(५) ताम्बूल—इसमें पान-सुपारी आदि मुंह साफ करने की चीजों की मर्यादा की जाती है। जसे—ताम्बूल सम्बन्धी चीजें इतनी ( ) सख्या से अधिक उपयोग मे न लूगा।

(६) वस्त्र—इसम पहनने ओढने आदि के वस्त्रों की मर्यादा है। जैसे अमुक ( ) सख्या या अमुक प्रकार के वस्त्रों से अधिक वस्त्र न पहनूगा और न ओढूगा।

(७) कुसुम—इसमें फूल इत्र आदि सूघने की चीजों का परिमाण है। जसे—अमुक ( ) सख्या से अधिक चीजें न सूघूगा।

(८) वाहन—इसमे सवारियों का परिमाण है। जैसे अमुक ( ) सख्या से अधिक हाथी घोडा, मोटर आदि सवारी पर न चढूगा।

(९) शयन—इसमें खाट, पलङ्ग, चटाई, दरी आदि बिछाने की वस्तुओं का परिमाण है। जैसे—अमुक ( ) संख्या से अधिक शयन आसन काम में नहीं लूगा।

(१०) विलेपन—इसमें केसर, चन्दन स्नो, क्रीम, पाउडर आदि की मर्यादा करनी चाहिए। जैसे-अमुक () संख्या से अधिक विलेपन के पदार्थ उपयोग में न लूगा।

(११) ब्रह्मचर्य—इसमें अब्रह्मचर्य का त्याग या मर्यादा करनी चाहिए तथा कामोद्दीपक नाटक सिनेमा आदि के त्याग एवं शृंगार के हेतुभूत आभूषण पहनने का त्याग या परिमाण करना चाहिए।

(१२) दिशा—इसमें छहों दिशाओं में इतने इतने ( ) कोसों से अधिक न जाऊगा ऐसा त्याग करना चाहिए।

(१३) स्नान—इसमें स्नान का त्याग या मर्यादा करनी चाहिए। दपण कंघी तथा हजामत और उनके साधन भूत उस्तरा ब्लेड आदि की मर्यादा भी इसी के अन्तर्गत की जा सकती है।

(१४) भक्त—इसमें भोजन की मर्यादा करनी चाहिए। जैसे—इतनी बार ( ) से अधिक भोजन न करूंगा। इतने घरों से अधिक खाने के लिए न जाऊंगा। (द्रव्य आदि का विशेष वर्णन पृष्ठ ८ प्रश्न ३ में आगया है) चौदह नियम धारने वाले को तीन प्रकार के व्यापार का मर्यादा उपरान्त त्याग करना चाहिए। वे इस प्रकार हैं— १ असिकम २ मसिकम ३ कृषिकम।[1]

---

१ जीवाभिगमप्रतिपत्ति ३ उ० १

(१) तलवार आदि शस्त्रों से आजीविका करना अर्थात् पुलिस या सेना की नौकरी करना असिकर्म है।

(२) लेखा पढी द्वारा यानी व्यापार द्वारा आजीविका करना मसिकर्म है। (मसि का अर्थ स्याही है)।

(३) कृषि (खेती) से आजीविका चलाना कृषिकर्म है।

उपर्युक्त नियमों के अलावा काल की मर्यादा करके जो भी त्याग किए जाय वे सब दसवें व्रत में गिने जाते हैं। जैसे नवकारसी-पोरसी एकासन उपवास यावत् छः मास तक की तपस्या करना। अमुक अमुक तिथियों में चौविहार करना, रात्रि भोजन, हरीलीलोती, अब्रह्मचर्य एवं व्यापार आदि त्यागना, घडी-घडी मौन करना, खा पीकर पोखली आदि श्रावकवत् संवर-पौषध करना।[1]

पाँच अणुव्रत, तीन गुणव्रत यावज्जीवन के लिए करने होते हैं और ये सामायिक-देशावकाशिक आदि अमुक समय तक के लिये किये जाते हैं। यदि पिछले आठों व्रत वर्ष-दो वर्ष के लिए किए जाएँ तो वे दसवें व्रत में माने जाते हैं।

यदि दो-तीन सामायिकें भी एक साथ ली जाए तो नौवां व्रत न होकर दसवां हो जाता है। यहाँ यह ध्यान कर लेना चाहिए कि प्रतिदिन एक सामायिक के नियम वाला व्यक्ति यदि दो सामायिक एक साथ पच्चक्खे ले तो उसके सामायिक का नियम कैसे पला? दोनों ही व्रत हैं एवं दुगुना संवर किया है, अतः उसके सामायिक का नियम पल गया ऐसा माना गया है।

(३) प्रश्न—दसवें व्रत के अतिचार कौन-कौन से हैं?

---

१ भगवती १२।१

उत्तर—पाँच अतिचार है¹—आनयन प्रयोग २ प्रेष्यवण प्रयोग, ३ शब्दानुपात, ४ रूपानुपात ५ बहि पुद्गलप्रक्षेप।

(१) मर्यादित क्षेत्र के बाहर से कुछ लाना हो तो व्रत भग के भय से स्वय न जाकर दूसरे व्यक्ति से वस्तु मगवाना आनयनप्रयोग अतिचार है।

(२) मर्यादित क्षेत्र से बाहर दूसरे के पास कोई वस्तु भेजना या नौकरादि को भेजकर अपना काम करवाना। प्रेष्यवणप्रयोग अतिचार है।

(३) मर्यादित क्षेत्र से बाहर न जा सकने पर छीक, खासी या खखारादि द्वारा दूसरे को बुलाना या अपना आशय समझाना शब्दानुपात अतिचार है।

(४) मर्यादित क्षेत्र से बाहर रहे हुए व्यक्ति को अपना रूप दिखाकर यानि शारीरिक चेष्टा कर के बुलाना या कुछ सूचना देना रूपानुपात अतिचार है।

(५) मर्यादित क्षेत्र से बाहर प्रयोजनवश अपना भाव जताने के लिए ढेला पत्थर आदि फकना बहि पुद्गलप्रक्षेप—अतिचार है।

पूरा विवेक न होने से तथा सहसाकार-अनुपयोगादि से पहले दो अतिचार है और मायापरता एव व्रत सापेक्षता से पिछले तीन अतिचार हैं। इन सभी अतिचारो से श्रावक को दूर रहना चाहिए।

---

१ उपासक दशा अ० १

बारहवाँ पुञ्ज

(१) प्रश्न—ग्यारहवां पोषधोपवास व्रत समझाइए ?

उत्तर—धर्म की पुष्टि करने वाले व्रत में निवास करना पौषधोपवास व्रत है। पौषध चार प्रकार का है[१]—

१ आहारपोषध २ शरीरपोषध ३ ब्रह्मचर्य पोषध ४ अव्यापार पोषध।

(१) चोविहार उपवास करना सर्वत आहारपोषध है तथा नवकारसी पोरसी आदि करना देशत (आंशिक रूपसे) आहारपोषध है।

(२) स्नान, उबटन विलेपन गन्ध पुष्प वस्त्र एवं आभूषणो से शरीर को अलंकृत करने का त्याग करना शरीरपोषध है। समूचा त्याग करना सर्वत शरीरपोषध है एवं यथाशक्ति कुछ-कुछ त्याग करना देशत शरीरपोषध है।

(३) अब्रह्मचर्य का त्याग करना ब्रह्मचर्यपोषध है। इसके भी देशत—सर्वत दो भेद हैं।

(४) कृषि—वाणिज्य आदि सावद्य व्यापार का त्याग करना अव्यापारपोषध है। इसके भी पूर्ववत दो भेद हैं।

यह चारों प्रकार का पोषध यदि देशत किया जाय तो दसवां व्रत होता है तथा सर्वत अर्थात (कम से कम एक दिन-रात के लिए) दो करण-तीन योग से ये चारों त्याग किये जाय तो ग्यारहवां प्रतिपूर्णपौषधोपवासव्रत कहलाता है। सामायिकवत इस व्रत को भी

---

१ आवश्यक अ० ६

ग्रहण करते समय नवकारमन्त्र के उच्चारणपूर्वक तीन बार गुरु वन्दना करके पूर्व-उत्तर की तरफ मुंह कर के फिर प्रभु की (साधु साध्वियाँ हो तो उनकी) आज्ञा लेकर निम्नलिखित पाठ* बोला जाता है[१]—

पौषध के नियम प्रायः सामायिकवत् हैं। कुछ फर्क है, जैसे— सामायिक का समय एक मुहूर्त है और पौषध का आठ प्रहर है। सामायिक में सोने का निषेध है किन्तु पौषध वाला विधिपूर्वक सोता है। किन्तु सोने का मतलब यह नहीं कि वह दिन रात पड़ा ही रहे। उसे विधिपूर्वक प्रतिक्रमण करके या सुनके रात के समय अधिक से अधिक धर्म जागरण करना चाहिए। पुराने जमाने में श्रावक पौषध के समय बहुत कम सोया करते थे। कामदेव एवं चुलनीपिता श्रावक पौषध में रात्रि समय धर्म जागरण कर रहे थे, उस समय उनकी परीक्षा करने देवता आए थे। (आजकल धर्म जागरण करने वाले श्रावक विरले ही मिलेंगे)।

* एकारसमं पडिपुण्णपोसहोववासवयं, असणं, पाणं खाइमं, साइमं पच्चक्खाणं अबंभ पच्चक्खाणं उम्मुक्कमणि, सुवण्णं—पच्चक्खाणं, माला वन्नग, विलेवण पच्चक्खाणं सत्थ मुसलाइयं सावज्जजोगं सेवणं, पच्च क्खाणं जाव अहोरत्तं पज्जुवासामि दुविहं तिविहेणं न करेमि न कारवेमि मणसा वयसा कायसा तस्स भंते ! पडिक्कमामि निन्दामि गरिहामि अप्पाणं वोसिरामि।

१ पौषध का पाठ न आता हो तो दूसरों से उक्त पाठ सुनना चाहिए।

प्रश्न २—पौषध मे ओढने बिछाने के वस्त्र रखने की क्या विधि है ?

उत्तर—रूई के बिछौने तथा तकिये आदि नही रखे जाते। मुहपत्ति, पूजणी, धोती कबल एव चद्दर आदि जो उपकरण रखे जाते है उनका सुबह शाम दोनों समय पडिलेहण किया जाता है। वह भी साधुओं की तरह विधिपूर्वक करना होता है। अविधि से खडे खडे पडिलेहण करना नियम विरुद्ध है। यद्यपि पौषध म रखे हुए उपकरण अव्रत मे है फिर भी उनका पडिलेहण करना असावधानीवश उनके द्वारा हुई जीवहिंसा की आलोचना प्रतिक्रमण करन के लिए है। अन पडिलेहण करते समय उनने से बीज हरित कीडे आदि के कलेवर निकले तो उनका गुरुओं से प्रायश्चित्त लेना चाहिए।

प्रश्न ३—श्रावक को महीने मे कितने पौषध करने चाहिए ?

उत्तर—शास्त्रों के वर्णनों को पढने स मालूम होता है कि पुराने जमाने के श्रावक आठम-चौदस एव अमावस-पूनम ऐसे एक मास मे छ दिन उपवास (दो उपवास-दो बेले) करके प्रतिपूर्ण (अष्ट प्रहरी, सोलह प्रहरी) पौषध किया करते थे। उत्तरा० ५।२३ मे कहा है कि श्रावक को एक महीने मे दो पौषध करने चाहिए। परिस्थितिवश कदाच दो न बन सकें तो एक पौषध तो करना उसके लिये अत्यन्त आवश्यक है।

आजकल बारह व्रत धारने वाले कई श्रावक एक वर्ष मे एक अष्ट प्रहरी पौषध करने का नियम लेते हैं और कई तो एक से भी आनाकानी करते हैं अर्थात् चतुःप्रहरी (चौपहरिया) पौषध स हो ग्यारहवें व्रत को मना लेते हैं। कहाँ तो मास मे छ अथवा दो

जहाँ बारह मास में एक पौषध और वह भी चतुष्प्रहरी, कमजोरी की भी हद हो गई।

वास्तव में पौषध अष्टप्रहरी ही होता है किन्तु श्रावक वर्ग की कमजोरी देखकर सम्भवतः "समथिंग इज बेटर देन नथिंग" की उक्ति का अनुसरण करके आचार्यों ने चतुष्प्रहरी पौषध को भी मान्यता दे दी तब आजकल अष्टप्रहरी की अपेक्षा चतुष्प्रहरी पौषध ही अधिक होने लगे हैं।

चतुष्प्रहरी पौषध भी कई लोग पानी पीकर करते हैं किन्तु उन्हें सोचना चाहिए कि पानी पीने से तो वास्तविक पौषध (ग्यारहवाँ व्रत) होता ही नहीं, दसवाँ देशावकाशिक व्रत होता है।

प्रश्न ४—पौषध के अतिचार समझाइए ?

उत्तर—पाँच अतिचार हैं। इनके सेवन से पौषध दूषित हो जाता है अतः अतिचारों से बचकर शुद्ध पौषध करना चाहिए। अतिचारों का विवेचन इस प्रकार है*।

१—अप्रतिलेखित दुष्प्रतिलेखित शय्या संस्तारक—पौषध के समय काम में लिए जाने वाले शय्या-संथारे का प्रतिलेखन न करना अथवा अविधि से करना पहला अतिचार है।

२—अप्रमार्जित दुष्प्रमार्जित शय्या संस्तारक—शय्या-संथारे पर रजोहरण पूँजणी आदि से न पूजना या अविधि से पूजना दूसरा

नोट—*औपपातिक प्रश्न २०, सूत्र कृत २ अ २ तथा विपाक सूत्र २ के अनुसार।

नोट—[illegible]

अतिचार है। शय्या का अर्थ स्थान एवं संथारे का अर्थ बिछान के घास वम्बल पाट आदि से है।

३—अप्रतिलेखित दुष्प्रतिलेखित उच्चारप्रस्रवणभूमि—मल मूत्र आदि परठने के स्थान को न देखना या असावधानता से देखना तीसरा अतिचार है। पौषध वाले को नाली-टट्टी आदि मे मल मूत्र का परित्याग करना नहीं कल्पता अतः उसके लिए स्थान को विधिपूर्वक देखना जरूरी है।

४—अप्रमार्जित दुष्प्रमार्जित उच्चारप्रस्रवणभूमि—मल मूत्र परठने के स्थान को न पूजना या अविधि से पूजना चौथा अतिचार है। (मल मूत्र परित्याग करने से पहले स्थान को पूजना परमावश्यक है) पौषध मे पूजणी आदि न रखने वाले श्रावकों को यहाँ कुछ विचार करना चाहिए।

५—पौषधोपवास का सम्यक् अपालन—आगमोक्त विधि से स्थिर चित्त होकर पौषधोपवास का पालन न करना अर्थात् पौषध में आहार, शरीर शुश्रूषा अब्रह्मचर्य तथा सावद्य व्यापार की अभिलाषा करना पाँचवाँ अतिचार है।

पहले चार अतिचार व्रतों के प्रमाद लापरवाही की अपेक्षा से है और पाँचवाँ भावना दूषित होने की अपेक्षा से है।

प्रश्न ५—पौषध के अठारह दोष कौन कौन से हैं¹।

उत्तर—यद्यपि दो करण-तीन योग से त्याग किए हुए जितने भी सावद्य कार्य किए जाय वे सभी पौषध के दोष हैं, फिर भी

नोट१—जैन सिद्धांत बोलसंग्रह भाग ५ पृष्ठ ४११

साधारण बुद्धि वालों को विशेष सावधान करने के लिए प्राचीन ग्रन्थकारों ने पौषध के निम्नलिखित अठारह दोष बताए है ?—

१—पौषध के निमित्त ठूस-ठूस कर सरस आहार करना।

२—पौषध की पहली रात्रि में अब्रह्मचर्य सेवन करना।

३—पौषध के लिए नख केश आदि का सस्कार करना (हजामत बनवाना)।

४—पौषध के ख्याल से वस्त्रादि धोना या धुलवाना।

५—पौषध के लिए शरीर का मण्डन करना (चन्दन केशर मेहदी आदि लगाना)।

६—पौषध के निमित्त आभूषण पहनना।

ये छः दोष पौषध के निमित्त पौषध करने से पहले लगाए जाते हैं। इनसे श्रावक को बचना चाहिए अर्थात् पौषध के लिए ये सावद्य काय न करने चाहिए। अब पौषध लेने के बाद वजने योग्य बारह दोष—

१—पौषध मे दूसरे की वैयावच्च (हाथ पर दबाना) करना या दूसरे से करवाना।

२—शरीर का मैल उतारना।

३—बिना पूजे शरीर खुजलाना या दीवार आदिका सहारा लेना।

४—अकाल मे निद्रा लेना यानि दिन में सो जाना, रात को प्रथम प्रहर मे नीद लेना तथा पिछली रात्रि को उठकर धर्म जागरण न करना।

५—बिना पूजे मल मूत्र आदि परठना।

६—निन्दा विकथा एव हसी मजाक करना।

७—ससारिक बातो को चर्चा करना।

८—स्वय डरना या दूसरो को डराना।

६—कलह (लडाई झगडे) करना।

१०—खुले मुँह अयत्ना से बोलना।

११—स्त्री के अङ्ग-उपाग (राग-दृष्टि से) निहारना।

१२—काका-मामा आदि सासारिक सम्बन्धों के नाम से पुकारना।

प्रश्न ६—पौषध के समय श्रावक को क्या करना चाहिए ?

उत्तर—मोह लोभ, भय आदि स बच कर अधिकाधिक सयम में लीन रहना चाहिए। चुलनीपिता श्रावक का माता के प्रति मोह करने से, सुरादेव श्रावक का रोगों के भय से तथा चुलशतक का धन के प्रति लोभ करने से पौषध व्रत दूषित हो गया था। इनका वणन उपासकदशा सूत्र मे है।

प्रश्न ७—चुलनीपिता आदि श्रावकों की कहानी सुनाइये ?

उत्तर—उनका सक्षिप्त जीवन इस प्रकार है।

चुलनीपिता—बनारस मे चौबिस करोड सोनयों एव आठ गोकुल (दस हजार गायों का एक गोकुल) का स्वामी चुलनीपिता गाथापति (गृहस्थ) रहता था। भगवान महावीर का पदापण हुआ। वाणी सुन कर चुलनीपिता ने श्रावक के व्रत ग्रहण किए। एक दिन जब वह पौषधशाला मे पौषध करके अधरात्रि क समय धमजागरण कर रहा था। एक देवता प्रकट होकर कहने लगा यदि तू अपने व्रत नियम धम को नही छोडेगा तो तेरे ज्येष्ठ पुत्र को मार कर उसके

तीन टुकड़े करके उन्हें उबलते हुए तेल में डालूँगा एवं उसका मांस व खून तेरे शरीर पर छिड़कूंगा जिससे तू आर्तध्यानवश अकाल मरण को प्राप्त हो जायगा। देव ने, इस प्रकार दो-तीन बार कहा, श्रावक सुदृढ़ रहा। देवता ने उसके ज्येष्ठ पुत्र को मारा एवं तेल में तल कर मांस खून से चुलनीपिता के शरीर को सींचा, फिर भी श्रावक न डोला। देवता ने दूसरे तीसरे पुत्र को भी पूर्ववत् मार, काट कर मांस खून छिड़का फिर भी चुल्नीपिता का रोम भी न चला। आखिर देव ने उसकी पूज्य माता भद्रा को मारने का दो-तीन बार ऐलान किया। माता के मोहवश श्रावक विचलित हो गया। उस देव को पकड़ने के लिये ज्योंही खड़ा हुआ देवता आकाश में उड़ गया एवं उसके हाथ में एक खम्भा आया। उसे पकड़ कर वह जोर जोर से चिल्लाने लगा। जाग कर माता आई, उसने पुत्रमरण आदि का सारा हाल सुनाया। माता ने कहा तेरे तीनों पुत्र सानन्द सो रहे हैं। तेरे व्रत—नियम की परीक्षा करने कोई देवता आया था, किन्तु तूने मोहवश अपने पौषधव्रत का भङ्ग कर लिया।

चुल्नीपिता व्रतभङ्ग का प्रायश्चित्त लेकर शुद्ध हुआ। अन्त में ग्यारह पडिमाएं धारण की एवं समाधिमरण से मर कर प्रथमस्वर्ग के अरुणप्रभ विमान में चार पल्योपम आयुष्यवाला देव हुआ। वहाँ से च्यव कर महाविदेह क्षेत्र में जन्म लेगा और उसी भव में मोक्ष जाएगा।

उपासक दशा अ० ३ ४ ५

सुरादेव श्रावक—बनारस नगर मे सुरादेव गाथापति रहता था। उसके अठारह करोड सोनये एव छ गोकुल थे। भगवान् महावीर के निकट उसने व्रत स्वीकार किए। एकदा वह पौषध करके धर्म-ध्यान मे लीन हो रहा था अधरात्रि के समय प्रकट होकर एक देव ने कहा—या तो अपने व्रत नियम छोड दे अन्यथा तेरे तीनों पुत्रों को मारकर उनके पाच-पाँच टुकडे करूगा यावत् मास, खून, तेरे शरीर पर छिडकूगा। श्रावक निश्चल रहा। देव ने क्रमश ज्येष्ठ मध्यम और कनिष्ठ तीनो पुत्रों को मार कर उनका मास खून से सुरादेव का शरीर सींचा फिर भी वह विचलित न हुआ। तब देव बोला, यदि तू धर्म नही छोडेगा तो अब तेरे शरीर मे श्वास, कास, ज्वर दाह आदि सोलह रोग उत्पन्न करता हू। रोगों के भय से भयभीत होकर सुरादेव उसे पकडने दौडा, देवता भागा एव उसके हाथ में खम्भा पड आया तथा चिल्लाने पर उसकी स्त्री धन्या ने देवमाया का रहस्य समझाया। पौषधव्रत भग्न होने के कारण वह दण्ड लेकर शुद्ध हुआ एव सलेखना सथारा करके प्रथमस्वर्ग के अरुणकान्त विमान मे चार पल्योपम आयु वाला देवता हुआ। भवान्तर महाविदेह क्षेत्र मे मोक्ष जाएगा।

चुल्लशतक—आलम्भिका नगरी मे चुल्लशतक गाथापति था। उसके पास अठारह करोड सोनये एव छ गोकुल थे। भगवान् महावीर के पास उसने व्रत लिए। पौषध करते समय व्रत से डिगाने के लिये एक देवता ने उसके तीन पुत्र मारे एव सात सात टुकडे करके उसके शरीर को मांस, खून से सींचा। किन्तु वह निश्चल रहा। तब अन्त में देवता ने उसके १८ करोड सोनैयों को बाजारो मे फैलाने

की धमकी दी। धन के लोभ मे वह श्रावक उठ खड़ा हुआ। देवता अदृश्य हो गया एवं स्त्री द्वारा देवमाया का रहस्य बतलाने पर उसने व्रतभङ्ग का प्रायश्चित्त लिया। अन्त मे समाधिमरण को प्राप्त होकर प्रथम स्वर्ग के अरुणसिद्ध विमान मे देव हुआ। वहाँ से महाविदेह क्षेत्र मे जन्म लेकर मोक्ष जाएगा।

तेरहवाँ पुञ्ज

(१) प्रश्न—बारहवाँ व्रत समझाइए ?

उत्तर बारहवाँ अतिथि सविभाग व्रत है। जिसके मिलाप आने की कोई तिथि समय निश्चित नही है ऐसे त्यागी साधु का नाम अतिथि है। अपने लिये बनी हुई वस्तु का सम्यक् विभाग हिस्सा करके अर्थात् स्वयं सकोच करके अतिथि को देना अतिथिसविभाग व्रत है। इसका दूसरा नाम यथासंविभाग व्रत भी है।

इसमे श्रावक प्रतिज्ञा करता है कि मै पाँच महाव्रतधारी साधुओं को उनके कल्प के अनुसार निर्दोष—१ अशन—रोटी, दाल भात आदि २ पान—पीने योग्य पानी आदि द्रव्य ३ खादिम—फल मेवा मिठाई आदि ४ स्वादिम—पान-सुपारी इलायची आदि मुख को सुवासित करने वाली चीजें, ५ वस्त्र—कपडे, ६ पात्र—आहार, पानी रखने के लिये लकडी मिट्टी आदि के बर्तन, ७ कम्बल—ऊनी वस्त्र आदि, ८ पादप्रोञ्छन—पग पोंछने का वस्त्र खण्ड ९ पीठ—बाजोट, चौकी, १० फलक—सोने के लिये लम्बा पाट, ११ शय्या—मकान १२ सथारा—बिछाने के लिये घास-तृण आदि, १३ औषध—

सौंठ पीपर आदि एक दवा १४ भेषज—अनेक औषधियों मिलकर बने हुए चूर्ण, मिक्सचर, गुटिका आदि। ये चौदह प्रकार का दान निष्काम बुद्धिपूर्वक आत्मकल्याण की भावना से देता हुआ विचरता है।

ग्यारह व्रत तो अपने हाथ की बात है, जब भी इच्छा हो किये जा सकते हैं। (अढ़ाई द्वीप से बाहर असंख्य तिर्यंच—श्रावक माने गये हैं वे भी ग्यारह व्रतों का पालन करते हैं[२])। लेकिन बारहवें व्रत का लाभ मिलना कठिन है।

नोट १—हरिभद्रीय आवश्यक, प्रत्याख्यानाध्ययन—पृष्ठ ८३८ तथा पचाशक गाथा ३५ से ३२ के आधार से।

२—(क) श्रावक धर्म की विराधना करके कई मनुष्य असंख्यातवें अरुणवरद्वीप में विद्यमान असंख्यातयोजनविस्तार वाले मानसरोवर में मत्स्य आदि जलचरों के रूप में उत्पन्न होते हैं। सरोवर के निकट रत्नों का धूलि एवं सिंहासन भद्रासन बिछे हुए हैं। वहाँ ज्योतिषी देवता क्रीड़ा करते हैं। उन्हें देखकर जलचरों को जातिस्मरण ज्ञान होता है एवं पिछले भव में तोड़े हुए श्रावक के ग्यारह व्रतों को पुन ग्रहण कर लेते हैं। पानी में रहते हुए भी वे स्थिर रहकर सामायिक संवर एवं पौषध करते हैं किन्तु वहाँ साधु न होने से बारहवें व्रत का लाभ उन्हें नहीं मिल सकता। (जैन तत्त्व प्रकाश गुजराती प्रकरण ५ पृष्ठ ४७० के आधार से।

(ख) औपपातिक प्रश्न २० में जलचर खेचर-स्थलचर तीनों ही प्रकार के तिर्यञ्च जातिस्मरण द्वारा श्रावक-व्रत ग्रहण करते हैं—ऐसे कहा है।

चित वित पात्र तीनों का सुयोग होने पर ही यह व्रत होता है। चित्त—देने की भावना शुद्ध हो वित्त—वस्तु शुद्ध सूझती हो और पात्र—लेने वाले साधु शुद्ध पंचमहाव्रतधारी हों—इन तीनों मे से एक भी अशुद्ध हो तो बारहवाँ व्रत निष्पन्न नही होता। चित्त वित्त पात्र को समझने के लिये श्री भिक्षुस्वामी का दिया हुआ "हलुए" का दृष्टान्त हृदयगम करना चाहिये।

प्रश्न २—सुपात्रदान की भावना कैसे भानी चाहिये ?

उत्तर श्रावक को अपने घर के द्वार बन्द न रखने चाहिये। साधुओं के लेने योग्य जो भी वस्तुएँ अपने घर मे हों, सूझती रखनी चाहिये (असूझती को सूझती करके देना दोष है) सहज मे साधुओं के दर्शन हों तो गोचरी की विनती करनी चाहिए एवं योग मिलने पर उल्ट भाव से बहराना चाहिए। साधुओं के पधारने की सभावना हो तो पहले भोजन न करना चाहिये। साधुओं को बहराने के बाद वस्तु कम रह जाये तो सकोच कर लेना चाहिये किन्तु दुबारा न बनानी चाहिये। वस्तु बनाते समय साधुओं का स्मरण करके अधिक न बनानी चाहिए एव भोजन करते समय साधुओं को न भूलना चाहिए यानि ऐसी भावना रखनी चाहिए कि इस समय साधु पधार जाय तो दान से पहले अपने हाथों द्वारा कुछ दान देकर लाभ कमाऊ। साधुओं को आते देखकर सामने आना और वापिस पहुँचाते जाना भी आगम मे वर्णित है।[१]

नोट १—विपाक श्रुत २ अ १

प्रश्न ३—दान कितने प्रकार के हैं ?

उत्तर दस प्रकार के माने गए हैं। (१) अनुकम्पादान, (२) संग्रहदान (३) भयदान (४) कारुण्यदान (५) लज्जादान (६) गौरवदान (७) अधमदान (८) धर्मदान (९) करिष्यति दान (१०) कृतदान[1]।

(१) कृपण-दीन-अनाथ आदि पर अनुकम्पा करके जो कुछ दिया जाता है वह अनुकम्पादान है।

२ संकट के समय सहायता प्राप्त करने के लिये किसी को कुछ देना संग्रहदान है।

(३) राजा मन्त्री पुरोहित आदि के भय से अथवा भूत पिशाच ग्रहदशा आदि के भय से किसी को कुछ देना भयदान है।

(४) मृतकों के पीछे मृत्यु भोजन करना या ब्राह्मण आदि को कुछ देना कारुण्य-दान है।

(५) मन न होने पर भी समाज के दबाव से कुछ दे देना लज्जादान है।

(६) यश, कीर्ति के लिये नटों पहलवानों अथवा स्वजन मित्रों को कुछ देना गौरवदान है।

(७) हिंसा, झूठ, चोरी, परदारगमन और परिग्रह मे आसक्त व्यक्तियों को यदि कुछ दिया जाय तो वह अधमदान है।

(८) जिनके लिये तृण और मणि मोती एक समान है—ऐसे सुपात्रों (साधुओं) को कुछ देना धर्मदान है। यह दान अनन्त अतुल

१—स्था १०।७४५ उमास्वातिकृत दान की व्याख्या

और अनन्त है। धर्मदान के तीन भेद भी किये गये है—ज्ञानदान, अभयदान और सुपात्र दान।

(९) भविष्य मे प्रत्युपकार की आशा से किसी को कुछ देना करिष्यतिदान है।

(१०) पहले किये हुए उपकार का बदला चुकाने के लिये किसी को कुछ देना कृतदान है अथवा प्रत्युपकारदान है।

इन दसो दानो मे धर्मदान के सिवा नव दान सासारिक है। यद्यपि श्रावक को समय समय पर सभी करने पडते है, किन्तु इनमे धर्म पुण्य न मानना चाहिये।

सुपात्र दान देने का अधिकाधिक प्रयत्न करना चाहिये किन्तु सुपात्रो को जो भी वस्तु दी जाय वह बिल्कुल शुद्ध (बयालीस दोषो से रहित) होनी चाहिये। शुद्ध दान देकर धन्य सार्थवाह, सुबाहु कुमार, रेवती यशोमती, धन्ना शालिभद्र आदि अनेक जीव तर गए है।

प्रश्न (४) आहारादि के सिवा क्या और भी कोई चीज का दान होता है

उत्तर—हाँ। आगम मे शिष्य—भिक्षा का वर्णन भी मिलता है[१]। अत पुत्रादि को दीक्षा की आज्ञा देना भी बहुत बडा दान है। अनुभवियो के कथनानुसार आहार का दान सबसे पहला है। आहार से पानी का दान कठिन है, क्योकि रोटी प्रत्येक घर मे बनती है, पर पक्का (अचित्त) पानी नहीं बनता।

---

१ भगवती ६ । ३३ जमालि के वर्णन में "अम्हेणं देवाणुप्पिया सीस भिक्खं दलयामो" ऐसा पाठ है।

पानी की अपेक्षा वस्त्र का दान दुष्कर है। कारण रंगीन एवं मिले हुए वस्त्र साधु नहीं पहनते। वस्त्र से भी शय्या-मकान का दान मुश्किल है। क्योंकि साधु के रहने योग्य मकान हर एक के यहाँ मांगे नहीं मिल सकता। ये पिछले सभी दान क्रमशः दुष्कर है। किन्तु अपने पुत्र—पुत्री आदि का गुरु-चरणों में दान करना दुष्कर-दुष्कर एवं महादुष्कर है।

(८) बारहवें व्रत के अतिचार बतलाइये[1]।

उत्तर—पांच अतिचार माने गये हैं।

(१) सचित्तनिक्षेप —साधुओं को नहीं देने की भावना से उनके लेने योग्य अचित्त वस्तु का सचित्त (पृथ्वी पानी, बीज आदि) पर रख देना।

(२) सचित्तपिधान —साधु को नहीं देने की भावना से अचित्त वस्तु को सचित्त फल आदि से ढक देना।

(३) कालातिक्रम —साधु को नहीं देने की भावना से काल अतिक्रमण करना अर्थात् भिक्षा के समय से पहले जीम लेना या बाद में रसोई आदि बनाना।

(४) परव्यपदेश—साधु को नहीं देने की भावना से अपनी वस्तु को दूसरे की बता देना।

(५) मत्सरिता—दूसरे को दान देता देखकर प्रतिस्पर्धा करना यानि उससे बड़ा दानी कहलाने के लिए अधिक दान देना, अथवा साधु द्वारा वस्तु मांगने पर कुपित होना तथा कषाय कलुषित चित्त से

---

१ उपासकदशा अ० १ तथा हरिभद्रीय आवश्यक अ

(नही दूंगा तो साधु मेरी निन्दा करेंगे या मैं नही दूंगा तो बेचारे ये भूखे मरेंगे, ऐसे सोचते हुए) दान देना।

इन सभी अतिचारों से बचकर श्रावक को बारहवें व्रत की सच्ची आराधना करनी चाहिए। बारह व्रतों का पालन करके अनेक जीव संसार समुद्र से तर गये हैं। आनन्द आदि दस श्रावक तो इन व्रतों के प्रताप से भवान्तर मे मोक्षगामी हो बन गए।

व्रतधारी श्रावकों को क्रमश त्याग वैराग्य बढ़ाते हुए संसार की मोह माया से दूर होने का प्रयत्न सदा चालू रखना चाहिये एवं पुत्रादि के योग्य कार्यकर्त्ता हो जाने के बाद यदि शक्ति हो तो सयम ले लेना चाहिए। कदाच सयम लेना सभव न हो तो घर मे रहकर श्रावक की पडिमाओं का अभ्यास करने मे तो अवश्य लगना ही चाहिये। आनन्द आदि श्रावकों ने ऐसे ही किया है।

चौदहवाँ पुञ्ज

(१) प्रश्न—पडिमा का क्या अर्थ है ?

उत्तर—विशेष अभिग्रह को पडिमा (प्रतिमा) कहते है। साधुओं की उपासना (सेवा) करने वाला श्रावक उपासक कहलाता है। जैन शास्त्र मे उपासकों के करने योग्य ये ग्यारह पडिमाए कही हैं। १ दर्शन प्रतिमा, २ व्रत प्रतिमा, ३ सामायिक प्रतिमा ४ पौषध प्रतिमा, ५ कायोत्सर्ग प्रतिमा, ६ ब्रह्मचर्य प्रतिमा, ७ सचित्त प्रतिमा, ८ आरम्भ प्रतिमा, ९ प्रेष्य प्रतिमा, १० उद्दिष्टभक्त प्रतिमा ११ श्रमण भूत प्रतिमा।

नोट—१ दशाश्रुत स्कन्ध दशा ६ तथा समवायाग—समवाय ११

(१) दर्शन-प्रतिमा—इसमे श्रावक एक मास तक निरतिचार (शङ्काकाङ्क्षादि दोष रहित) सम्यक्त्व का पालन करता है अर्थात् क्रियावादी, अक्रियावादी एव नास्तिक आदि वादियों के मतों को भली प्रकार जानकर भी सुदृढ रहता है। कसी भी परिस्थिति क्यों न हो, वह देव-गुरु धर्म के सिवा किसी को वन्दना नमस्कार नही करता सगे-सम्बन्धियों को जुहार, सलाम, जयरामजी को करना भी उसके लिए निषिद्ध है, क्योंकि ससार म रहता हुआ भी उस समय वह ससारिक व्यवहारों स अलग होता है।

(२) व्रत प्रतिमा—यह दो मास की होती है। पहली प्रतिमा के सभी नियम पालते हुए इसमे सभी प्रकार के धर्म की रुचि विशेष रखी जाती है। ग्रहण किए हुए अणुव्रतों गुणव्रतों एव शिक्षाव्रतों का निरतिचार पालन करना होता है अर्थात चारित्रशुद्धि की तरफ विशेष झुक कर कर्मक्षय करने का प्रयत्न किया जाता है।

(३) सामायिक प्रतिमा—यह तीन महीनें की है। पिछले सारे नियमों को पालता हुआ श्रावक नियमित रूप से प्रात मध्याह्न एव सध्या तीनों समय शुद्ध सामायिक तथा देशावकाशिक व्रत (नवकारसी पोरसी) आदि का अभ्यास करता है।

(४) पौषध प्रतिमा—पूर्व नियमों का यथाविधि पालते हुए श्रावक को इस प्रतिमा मे चार मास तक अष्टमी चतुर्दशी, अमावस्या एव पूर्णिमा के दिन अर्थात् महीने मे छ दिन चौ
सहित प्रतिपूर्ण (अठपहरिये-सोलहपहरिये) पौषध

(५) कायोत्सग प्रतिमा—पिछले नियमों के अतिरिक्त इस प्रतिमा मे श्रावक रात के समय कायोत्सग करता है, स्नान, रात्रि भोजन एव धाती की लाग लगान का त्याग करता है। दिन मे पूण ब्रह्मचारी रहता है और रात को अब्रह्मचर्य की मर्यादा करता है। इस प्रतिमा की उत्कृष्ट अवधि पाच मास की है। (असमथतावश कदाच कोई इसे बीच मे छोड दे तो उसकी अपेक्षा स इसकी स्थिति एक-दो तीन दिन आदि की भी कही गई है)।

(६) ब्रह्मचय प्रतिमा—पूव नियमों के अतिरिक्त इस प्रतिमा मे श्रावक पूण रूप से ब्रह्मचर्य पालता है। इसकी अवधि उत्कृष्ट छ मास की है।

(७) सचित्त प्रतिमा—इस प्रतिमा मे उत्कृष्ट सात मास तक श्रावक सचित्त आहार का सवथा त्याग करता है। दूसरे सारे नियम पूववत् हैं।

(८) आरम्भ प्रतिमा—इस प्रतिमा मे पूव नियमों के अतिरिक्त श्रावक उत्कृष्ट आठ मास तक आरम्भ समारम्भ करने का सवथा त्याग करता है। इस त्याग के बाद वह सचित्त पृथ्वी पानी अग्नि बीज आदि का सघट्टा भी नही कर सकता।

(९) प्रेष्य प्रतिमा—इस प्रतिमा वाला श्रावक आरम्भ समारम्भ करवा भी नहीं सकता अर्थात् कहकर दूसरे से अपने लिये रसोई, पानी, आदि भी नहीं बनवा सकता। दूसरे नियम पूववत् हैं एव इसका समय उत्कृष्ट नव मास है।

(१०) उद्दिष्टभक्त प्रतिमा—इस प्रतिमा वाला श्रावक साधुओं की तरह अपने लिए बनाया हुआ भोजन आदि भी नही ले सकता। वह उस्तरे से हजामत करता है अथवा शिखा (चोटी) रखता है। घर-सम्बन्धी प्रश्न पूछने पर वह दो भाषा बोलता है। जानकारी हो तो कह देता है—मैं जानता हूँ अन्यथा कह देता है—मैं नहीं जानता। हाँ ना के सिवा और कुछ नहीं कह सकता। इस प्रतिमा का समय उत्कृष्ट दस मास है।

(११) श्रमणभूत प्रतिमा—इस प्रतिमा वाला श्रावक शक्ति हो तो लोच करता है, अन्यथा हजामत करता है। लुञ्चित या मुण्डित मस्तक होकर तीन करण तीन योग से सावद्यकार्य का त्याग करता है एवं साधुवत् वेष (मुहपत्ति, रजोहरण आदि) धारण करता है (रजोहरण की डण्डी खुली रखता है)। महाव्रत समिति एवं गुप्तियों का निरतिचार पालन करता है। साधुओं की तरह वह गोचरी भी जाता है, किन्तु स्वजनों के ममत्व बन्धन होने के कारण केवल उन्ही के घरों मे गोचरी करता है। वह एषणासमिति का पूरा ख्याल रखता हुआ (४२ दोष टाल कर) भिक्षा लेता है। (भिक्षार्थ घर मे चले जाने से पहले पक कर चूल्हे से उतरे हुए चावल तो ले सकता है लेकिन घर मे जाने के बाद चूल्हे से उतरी हुई दाल नही ले सकता)।

वेष पडिलेहणादिक्रियाएँ एवं भिक्षाविधि साधुओं के समान होने से ग्यारहवीं प्रतिमा को श्रमणभूत कहा गया है। भिक्षार्थ गृहस्थ के घर मे प्रवेश करते समय वह कहता है कि मैं

श्रावक हूँ। मुझे भिक्षा दो। इस प्रतिमा का समय उत्कृष्ट ११ मास का है। पिछली प्रतिमाओं के नियम तो इसमे लागू हैं ही।

ग्यारह प्रतिमाएं क्रमश की जाएं तो उनके सम्पन्न होने मे साढ़े पाँच वर्ष (६६ मास) लगते है। कइयों की मान्यता है कि पहली पडिमा मे श्रावक को एकान्तर-उपवास, दूसरी मे बेले-बेले, तीसरी मे तेले तेले यावत् ग्यारहवी पडिमा मे ग्यारह ग्यारह की तपस्या करनी चाहिए, अस्तु!

पडिमाओं का पालन करते करते अथवा रोग या वृद्धावस्था आदि के कारणों से जब मृत्यु निकट प्रतीत होने लगे तब श्रावक को संलेखना सथारा करके समाधिमरण प्राप्त करने का प्रयत्न करना चाहिए।

प्रश्न २—सलेखना सथारा किसे कहते है?

उत्तर—शरीर एव क्रोधादि कषायों को क्षीण करने वाले विशेष तप को सलेखना कहते हैं।[1] वह यदि अन्तिममरण के समय की जाए तो उसे अपश्चिम मारणान्तिकी सलेखना कहा जाता है, तथा सलेखना करते करते यदि शरीर अधिक क्षीण प्रतीत होने लगे तब यावज्जीवन के लिये तीनों या चारों आहारों का त्याग कर देना सथारा—अनशन कहा जाता है।

प्रश्न ३—अंतिम सलेखना सथारा कैसे करना चाहिए?

उत्तर—आत्मार्थी श्रावक को दस प्रकार से आराधना करनी चाहिए।[2]

नोट १—सर्वार्थसिद्धि

२—श्रीमज्जयाचार्यकृत आराधना के आधार से

(१) सर्वप्रथम ग्रहण किये हुए सम्यक्त्वयुक्त बारह व्रतों में स्वयं-परवश जान या अनजान में जो कोई अतिचार-दोष लगे हों उनकी गुरु आदि के सामने सरल भाव से आलोचना करते हुए प्रायश्चित्त लेकर शुद्ध होना चाहिए।

(२) फिर ग्रहण किए हुए व्रतों का ऊंचे स्वर से दुबारा उच्चारण करना चाहिए।

(३) व्रतों का आरोपण करने के बाद सब जीवों से (कर सकता हो उनका पृथक् नाम लेकर) निःशल्य होकर क्षमतक्षामणा करना चाहिए (क्षमापना किये बिना मरने वाला विराधक माना गया है)।

(४) क्षमतक्षामणा करने के बाद प्राणातिपात आदि अठारह पापों का यथाशक्ति त्याग करना चाहिए।

(५) पाप-परित्याग के बाद अरिहन्त, सिद्ध या साधु एवं धर्म की शरण लेनी चाहिए।

(६) फिर जन्म-जन्मान्तर में किये हुये मिथ्यात्वादि दुष्कृत्यों की निन्दा करनी चाहिये।

(७) दुष्कृतनिन्दा के बाद अपने द्वारा किये हुये स्वाध्याय ध्यान ज्ञान-दर्शन चारित्र की आराधना एवं दान शील तप भावना का अनुशीलन आदि सुकृत कार्यों का अनुमोदन करना चाहिए।

(८) सुकृत अनुमोदन के पश्चात् सद्भाव में रमण करना चाहिए। अन्तिम-समय की घोर वेदना में भगवान् महावीर, पार्श्वनाथ, स्कन्दक, गजसुकुमाल आदि महात्माओं की सहनशीलता का स्मरण करते हुए परिणामों को सुदृढ़ रखना चाहिए।

(९) सदभावना माने भाते मरण निकट प्रतीत होने लगे तब अरिहन्त सिद्ध एव धर्माचाय को नमोत्थुण देकर (नमस्कार करके) तिविहार अथवा अवसर हो तो चोविहार सथारा (अनशन) कर लेना चाहिए।

(१०) अनशन करने के वाद श्रीनमस्कार महामन्त्र का जाप करते करते इन दसो प्रकार की आराधना से सम्पन्न होकर समाधि मरण को प्राप्त होना चाहिए किन्तु बीच के समय मे इहलोक परलोक आदि की आशसारूप पाँचो अतिचारो का सेवन न हो जाय इसका पूरा पूरा ख्याल रखना चाहिए।

प्रश्न ४—पाँच अतिचार कौन कौन से हैं ?

उत्तर—अतिचारो के नाम इस प्रकार है—(१) इहलोकाशसा-प्रयोग (२) परलोकाशसाप्रयोग (३) जीविताशसाप्रयोग (४) मरणा-शंसाप्रयोग, (५) कामभोगाशसाप्रयोग।[1]

(१) इहलोकाशसाप्रयोग—इहलोक अर्थात मनुष्यलोक सम्बन्धी इच्छा करना। जसे सथारे के फलस्वरूप जन्मान्तर मे मैं राजा मन्त्री या सेठ बन जाऊँ।

(२) परलोकाशसा प्रयोग—सथारे के फलस्वरूप जन्मान्तर में इन्द्र अथवा महर्द्धिक देवता बन जाऊ—ऐसे परलोक विषयक अभि-लाषा करना।

नोट—उपासकदशा अ० १ धम सग्रह अधिकार २, श्लोक ६६ तथा हरिभद्रीय आवश्यक अ० ६, पृष्ठ ८३८।

(३) जीविताशंसाप्रयोग—बहुपरिवार एवं लोक-प्रशंसा (संथारे की महिमा) आदि कारणों से अधिक जीवित रहने की इच्छा करना।

(४) मरणाशंसाप्रयोग—संथारे की प्रशंसा न देख कर अथवा क्षुधा-तृषा से पीड़ित होकर जल्दी मरजाऊं तो ठीक—ऐसे विचार करना।

(५) कामभोगाशंसाप्रयोग—मनुष्य एवं देवता सम्बन्धी काम अर्थात् शब्द, रूप एवं भोग अर्थात् गन्ध रस स्पर्श की इच्छा करना।

ऊपर के विवरण से स्पष्ट प्रतीत होता है कि संथारेवान् श्रावक को पौद्गलिक सुखों की एवं जीवन मरण की इच्छा करनी नहीं कल्पती क्योंकि शास्त्रों के अनुसार ये इच्छाएं संथारे को दूषित करने वाली हैं।

प्रश्न ५—आराधक-श्रावकों की गति क्या है?

उत्तर—आराधक श्रावक नरक तिर्यंच-मनुष्य भवनपति वाणव्यन्तर एवं ज्योतिषी देवों में उत्पन्न नहीं होते, केवल वैमानिक देवताओं में जाते हैं। वे जघन्य प्रथम स्वर्ग और उत्कृष्ट तिर्यञ्च श्रावक आठवें स्वर्ग तक एवं मनुष्य श्रावक बारहवें स्वर्ग तक जा सकते हैं[१]। लेकिन विराधक होने पर नन्दमणिकार व अभीचिकुमार वत् अन्य गतियों में भटक सकते हैं। अभीचिकुमार विराधक होकर भवनपति देव बना था एवं नन्दमणिकार मेंढक बना था।

प्रश्न ६—क्या श्रावक को अवधि ज्ञान होता है?

उत्तर—अवधिज्ञानावरणीय-कर्म का क्षयोपशम होने पर इन्हें

१ औपपातिक, प्रश्न २०

ज्ञान हो सकता है। आनन्द एवं महाशतक—इन दोनों श्रावकों को संथारे में अवधि ज्ञान उत्पन्न हुआ था। उनकी जीवन घटनाएं इस प्रकार हैं[1]।

आनन्द श्रावक—वाणिज्यग्राम नगर में आनन्दगाथापति रहता था। वह राजमान्य एवं बड़ा भारी जमींदार था। उसके पास बारह करोड़ सोनये, चार गोकुल, पांच सौ हलों से जोती जावे इतनी जमीन हजार गाड़े एवं चार बड़े जहाज थे। गाड़े व जहाज स्थल तथा जल-मार्ग में व्यापारार्थ चलते थे।

भगवान महावीर पधारे, राजा-प्रजा दर्शनार्थ गए। प्रभु की देशना सुनकर आनन्द गाथापति ने अपनी धर्मपत्नी शिवानन्दा सहित श्रावक के बारह व्रत ग्रहण किए। निरतिचार पालन करते चौदह वर्ष व्यतीत हुए। तब उसने ज्येष्ठपुत्र को घर का भार सौंप कर श्रावक की ग्यारह पडिमाएं धारण कीं। शरीर अत्यधिक कृश होने से संलेखना संथारा करके धर्म ध्यान में लीन हो गया। उस समय उसे अवधिज्ञान उत्पन्न हुआ। वह तीन दिशाओं में पाँच पाँच सौ योजन तक लवण समुद्र, उत्तर दिशा में चुल्लहिमवान् पर्वत तक ऊपर प्रथम स्वर्ग एवं नीचे प्रथम नरक के लोलुयच्चुत नरकावास तक (जहाँ चौरासी हजार वर्ष की आयु है) जानने-देखने लगा।

उसी समय प्रभु महावीर का पदार्पण हुआ। गौतम बेले का पारणा लेने नगर में गोचरी गए। लौटते समय आनन्द के संथारे की बात सुनी एवं उसके यहाँ पधारे। आनन्द अत्यन्त प्रसन्न हुआ।

१ उपासकदशा अ० १ तथा ४ आधार से

उठ न सकने के कारण नजदीक पधारने की प्रार्थना की। पधारने पर सहर्ष वन्दना करके चरणस्पर्श किया एव अवधिज्ञान उत्पन्न होने की चर्चा की। गौतम स्वामी ने कहा—श्रावक को इतना बड़ा अवधिज्ञान नहीं हो सकता अत तुम्हें असत्य भाषण का प्रायश्चित लेना चाहिए।

आनन्द बोला—गुरुदेव। असत्य भाषण आपने ही किया है, अत आप ही भगवान् से प्रायश्चित लीजिए। शंकित होकर गौतम ने प्रभुचरणों मे आकर सारा हाल कहा। भगवान् ने फरमाया आनन्द सच्चा है तुमने भूल की है, अत अभी वापिस जाकर उससे क्षमा मांगो एव फिर प्रायश्चित्त लो। सरलहृदय एव निराभिमानी गौतम ने तत्काल आनन्द से क्षमा मांगी और फिर प्रायश्चित्त लेकर शुद्ध हुए।

आनन्द ने बीस वर्ष तक श्रावक धर्म का पालन किया। अन्त मे एक मास की सलेखना मे समाधिमरण को प्राप्त होकर [illegible] स्वर्ग के अरुण विमान मे चार पल्य की आयुवाला [illegible] देवता बना। वहाँ से च्यव कर विदेह क्षेत्र मे मोक्ष [illegible]

महाशतक—राजगृह नगर में महाशतक सेठ [illegible] चौबीस करोड सोनयों व आठ गोकुलो का स्वामी था [illegible] आदि १३ स्त्रियाँ थीं। रेवती के पास [illegible] गोकुल एव आठ करोड सोनये अलग थे। [illegible] के पास पीहर से प्राप्त एक एक करोड [illegible]

भगवान् महावीर का आगमन [illegible]

ने श्रावक के व्रत लिए व यथाविधि पालने लगा। इधर रेवती मांस-मदिरा का सेवन करती थी अतः उसकी कामपिपासा अत्यधिक बढ़ गई। उसने कामसुखों का हिस्सा लेने वाली अपनी बारह सपत्नियों को विष एवं शस्त्र के प्रयोग से मार डाला। फिर खूब मांस मदिरा खा-पीकर महाशतक के साथ यथेष्ट काम भोग भोगने लगी।

एक बार राजगृह में अमारी (हिंसाबन्दी) की घोषणा हुई। बाजार में मांस न मिलने से रेवती अपने पीहर के गोकुलों में से दो बछड़ों का मांस मंगाकर प्रतिदिन खाती थी। इधर महाशतक आनन्द की तरह पुत्र को घर संभला कर पडिमाओं की आराधना करने लगा। शरीर क्षीण होने पर उसने आमरणान्तिक-संलेखना (संथारा) स्वीकार की एवं उसे अवधिज्ञान हुआ।

एक दिन कामोन्मत्त होकर रेवती पौषधशाला में आई और महाशतक से भोग की प्रार्थना करने लगी, श्रावक शान्त रहा। किन्तु दो तीन बार आग्रह करने पर वह क्रुद्ध होकर ज्ञान के बल से कहने लगा—पापिनी! क्यों बकवास कर रही है, आज से सात रात के भीतर तू अलस (विसूचिका) रोग से पीड़ित होकर मर जायगी एवं प्रथम नरक के लोलुयच्चुत नरकावास में उत्पन्न होकर चौरासी हजार वर्ष तक नरक की घोर वेदना सहन करेगी। भयभीत रेवती तत्काल लौट गई एवं महाशतक के कथनानुसार मरकर प्रथम नरक में उत्पन्न हुई।

इधर उसी समय भगवान पधारे एवं उन्होंने गौतम के आगे महाशतक की चर्चा करते हुए कहा—गौतम! तुम जाकर संलेखना में बैठे

हुए उस श्रावक से कहो कि तुमने जो रेवती को कटु सत्य कहा है, वह ठीक नहीं किया, अतः उसका प्रायश्चित लेकर शुद्ध हो जाओ। गौतम उसके घर गए एवं वह दुष्कृत का प्रायश्चित लेकर निर्मल बना। अन्त मे एक मास की संलेखना सम्पन्न करके वह अरुणावतंसक विमान मे देव हुआ। यावत् आनन्दवत् महाविदेह क्षेत्र मे सिद्ध, बुद्ध व मुक्त होगा अस्तु।

पन्द्रहवाँ पुञ्ज

(१) प्रश्न—श्रावक की दिनचर्या कसी होनी चाहिए ?

उत्तर—श्रावक को प्रातः देरी से न उठना चाहिए। उठने के साथ ही उसके मुँह से नमस्कार महामन्त्र की ध्वनि निकलनी चाहिए। उसको सामायिक करके प्रातःकालीन प्रतिक्रमण करना चाहिए एवं चौदह नियम धारण करने चाहिए। उसे नवकारसी आने से पहले खाना पीना न करना चाहिए (हो सके तो पोरसी करनी चाहिए)। साधु-साध्वियों का योग हो तो सर्वप्रथम उनके दर्शन करने चाहिए एवं फिर सेवा व्याख्यानादि का लाभ लेना चाहिए (साधु-सेवा से दस बोलों की प्राप्ति होती है) अन्यथा स्वयं सामायिक करके धार्मिक पुस्तकों का पठन पाठन करना चाहिए एवं ध्यानस्थ होकर तीन मनोरथों का अनुशीलन करना चाहिए।

उसे जुआ, मांस, मदिरा, वेश्यागमन, शिकार, चोरी, परस्त्री गमन इन सातों कुव्यसनों तथा अभीक्ष्ण का समूचा त्याग करना

चाहिए। हरी सब्जी, रात्रिभोजन एवं अब्रह्मचर्य का पूर्ण त्याग न हो सके तो पाँच तिथियों के दिन तो इनको अवश्य छोड़ना ही चाहिए। अष्टमी, चतुर्दशी एवं पक्खी के दिन उपवास-पौषध करने चाहिए।

व्यापार मे अप्रमाणिकता न करनी चाहिए। अन्याय का पैसा घर में न आने देना चाहिए। मुनीम-गुमास्तों, नौकरों एवं पशुओं से अधिक श्रम न लेना चाहिए। वाणी का विवेक रखना चाहिए। बीभत्स शब्द न बोलने चाहिए। गृहकलह न होने देना चाहिए। सभी के साथ ऐसा मधुर-व्यवहार रखना चाहिए कि सम्पर्क में आने वाले पर जन श्रावकत्व की अमिट छाप लग ही जाये।

सध्यासमय पुन प्रतिक्रमण करके कण्ठस्थ बोल-थोकडों का स्वाध्याय करना चाहिए। आत्मिक चिन्तन करते हुए अपने दैनिक कृत्यों का स्मरण करना चाहिए जैसे मैंने आज व्यर्थ हिंसा कितनी की एव दया कितनी पाली? निकम्मी गप्पें कितनी मारी व सत्य कितना बोला? व्यापार मे प्रमाणिकता कितनी रखी तथा बेईमानी कितनी की? मन निर्विकार दशा मे कितनी देर रहा तथा विकार कितनी बार आये? धार्मिक क्रियाएं (सामायिक प्रतिक्रमणादि) आत्मकल्याणार्थ की या धार्मिकता का ढोंग दिखाने के लिए? क्रोध आने पर क्षमा आदि का आश्रय लिया या नहीं? कल की अपेक्षा आज कुछ त्याग वैराग्य की वृद्धि हुई या हानि? अपनी प्रशसा व दूसरों की निन्दा तो नहीं की?

इस प्रकार याद करके जान अनजान में किए गये पापों का पश्चात्ताप करते हुए दूसरे दिन के लिए विशेष सावधान रहने का दृढ़

सकल्प करना चाहिए। फिर सोते समय नवकार तिक्खुत्तो के[illegible] चउवीसत्थव करते हुए सथारा कर लेना चाहिए। (यह सागारी सथारा कहलाता है)।

(२) प्रश्न—सागारी-सथारा कैसे किया जाता है ?

उत्तर—उक्त सथारा करने वाला श्रावक कहता है कि निद्रा के समय कदाच चोर, सिंह, सर्प, अग्नि जल आदि का उपद्रव हो जावे एवं उससे अचानक मरजाऊँ तो मेरे शरीर सम्बन्धी मोह, ममत्व चारों आहार तथा अठारह पाप-स्थानकों का त्याग है एवं सुख-शान्ति पूर्वक उठ जाऊँ तो पूर्ववत् खुला हूँ। सागारी-सथारा करते समय कई श्रावक निम्नलिखित दोहा भी बोलते हैं —

आहार शरीर अने उपधि, पच्चक्खू पाप अठार।
मरण होय तो वोसिरे जीवूँ तो आगार॥

प्रश्न ३—क्या प्रतिक्रमण करना श्रावक के लिए जरूरी है ?

उत्तर—प्रतिक्रमण आवश्यक का चौथा अध्ययन है एवं अनुयोग द्वार सूत्र में कहा है कि[1] साधु श्रावक द्वारा दिन रात की सन्धि के समय अवश्य करने योग्य है, अतएव इसका नाम आवश्यक है। तथा भाव आवश्यक का स्वरूप बताते हुए कहा है कि[2] साधु साध्वी

१—समणेण सावएण य अवस्स कायव्व हवइ जम्हा।
अन्तो अहोनिसस्स य तम्हा आवस्सय नाम॥

२—ज ण इमं समणो वा समणी वा, सावओ वा साविया वा तच्चित्ते तम्मणे, तल्लेसे, त[illegible]ज्झवसिए [illegible] [illegible]ट्ठोवउत्ते तदप्पियकरणे, त भावणाभाविए अन्नत्थ [illegible] अकरेमाणे उभओकाल आवस्सयं करेंति से त लोगुत्तरियं भावावस्सय।

श्रावक श्राविका तच्चित्त यावत् एक मना होकर दोनो वक्त आवश्यक क्रिया करते हैं। इन दोनों शास्त्रीय उद्धरण के अनुसार श्रावकों के लिये दोनों वक्त प्रतिदिन आवश्यक करना जरूरी होता है। आज कल आवश्यक को आम तौर पर प्रतिक्रमण ही कहा जाता है।

कन्यों का कथन है कि प्रतिक्रमण का अर्थ पापों से पीछे हटना है अर्थात् व्रतों में लगे हुए अतिचार दोषों की आलोचना करके शुद्ध होना है अत व्रतधारी-श्रावकों के लिये यह आवश्यक हो सकता है किंतु सब के लिए नहीं।

समाधान इस प्रकार है—पाप केवल व्रतों के भङ्ग होने से ही नहीं लगता मिथ्यात्व, कषाय एवं योगों से भी लगता है। व्रतधारी न होने पर भी मिथ्यात्वादि का पाप तो लगता ही रहता है। प्रतिक्रमण मे सबकी आलोचना है, अत प्रतिक्रमण व्रती अव्रती सभी श्रावकों को अवश्य करना चाहिए।

आगम मे पाँच प्रकार का प्रतिक्रमण कहा है—१ आश्रवद्वार प्रतिक्रमण २ मिथ्यात्व प्रतिक्रमण, ३ कषाय प्रतिक्रमण ४ योगप्रतिक्रमण, ५ भावप्रतिक्रमण[1]।

(१) प्राणातिपात, मृषावाद, अदत्तादान, मैथुन और परिग्रह इन पाँचों आश्रवों से निवृत्त होना पुन इनका सेवन न करना आश्रवद्वारप्रतिक्रमण है।

(२) उपयोग, अनुपयोग या सहसाकारवश आत्मा के (शङ्का

---

[1]—स्था ५।३।४६३ तथा आवश्यकनिर्युक्ति गाथा १२५० ।

[illegible]) मिथ्यात्व-परिणाम में प्राप्त हो जाने पर उससे निवृत्त होना मिथ्यात्वप्रतिक्रमण है।

(३) क्रोध-मान-माया-लोभरूप कषाय परिणाम से आत्मा को निवृत्त करना कषायप्रतिक्रमण है।

(४) मन-वचन-काया के अशुभ व्यापार प्राप्त होने पर उनसे आत्मा को पृथक् करना योगप्रतिक्रमण है।

(५) आस्रवद्वार मिथ्यात्व, कषाय और योग में तीन करण तीन योग से प्रवृत्त न होना भावप्रतिक्रमण है।

मिथ्यात्व, अव्रत, प्रमाद, कषाय और अशुभयोग के भेद से भी प्रतिक्रमण पाँच प्रकार का कहा गया है। यहाँ अव्रत प्रमाद का समावेश आस्रव-प्रतिक्रमण में हो जाता है—

स्था० ६।५३८ में प्रतिक्रमण के छह भेद भी कहे हैं—१ उच्चार प्रतिक्रमण, २ प्रस्रवणप्रतिक्रमण, ३ इत्वरप्रतिक्रमण, ४ यावत्कथिक प्रतिक्रमण, ५ यत्किंचिन्मिथ्याप्रतिक्रमण ६ स्वप्नान्तिक प्रतिक्रमण।

(१-२) उपयोगपूर्वक मल-मूत्र का त्याग करके ईर्याप्रतिक्रमण करना उच्चारप्रतिक्रमण एवं प्रस्रवणप्रतिक्रमण है।

(३) दिन-रात्रि सम्बन्धी स्वल्पकालीन प्रतिक्रमण करना इत्वर प्रतिक्रमण है।

(४) महाव्रत आदि के रूप में यावज्जीवन के लिए पाप से निवृत्त करना यावत्कथिकप्रतिक्रमण है।

(५) असावधानीवश गलती होने पर उसी समय पश्चात्तापपूर्वक मिच्छामि दुक्कडं बोलना यत्किंचिन्मिथ्याप्रतिक्रमण है।

(६) सोकर उठने के बाद किया जाने वाला अथवा विकार वासना रूप कुस्वप्न देखने पर किया जाने वाला प्रतिक्रमण स्वप्नान्तिकप्रतिक्रमण है।

काल के भेद से प्रतिक्रमण तीन प्रकार का भी होता है—भूतकाल मे लगे हुए दोषों की आलोचना करना अतीतप्रतिक्रमण है। वर्तमानकाल म लगने वाले दोषों से सवर द्वारा बचना वर्तमानप्रतिक्रमण है और भावी दोषों को पच्चक्खाण द्वारा रोकना अनागतप्रतिक्रमण है।

विशेषकाल की अपेक्षा से भी प्रतिक्रमण के पाँच भेद माने गए हैं १ दवसिक, २ रात्रिक ३ पाक्षिक ४ चातुर्मासिक, ५ सांवत्सरिक इनमे क्रमश दिन, रात पक्ष, चातुर्मास एव वर्ष भर के पापों की आलोचना की जाती है।

प्रश्न ४—साधुओं के पास दर्शनार्थ जाते समय क्या विधि की जाती है ?

उत्तर—शास्त्रों मे पाँच अभिगम (साधुओं के पास जाते समय पाले जाने वाले नियम) कहे हैं। यथा[1]

१ सचित्तवस्तु (पुष्पताम्बूल आदि) पास न रखना।

२ अचित्तद्रव्य (वस्त्रादि) मर्यादित करना।

३ एकपट वाले दुपट्टे का उत्तरासङ्ग करना अर्थात् वन्दना करते समय खुले मुह न बोला जाय ऐसा उपाय करना।

४ मुनिराज के दृष्टिगोचर होते ही हाथ जोडना।

५ मन को एकाग्र करना।

१—भगवती २।५ तथा औपपातिक समवसरण अधिकार

इन पाँचों अभिगमों का अनुसरण करते हुए तीन बार तिक्खुत्तो का पाठ बोल कर विधिपूर्वक वन्दना करनी चाहिए एवं वन्दना करके संयमयात्रा की सुखसाता पूछनी चाहिए। शास्त्रकार कहते हैं कि[1] वन्दना करने से नीच गोत्र का क्षय होता है एवं उच्च गोत्र का उपार्जन होता है तथा अप्रतिहत सौभाग्य मिलता है।

प्रश्न ५—साधुओं की पर्युपासना (सेवा भक्ति) करने से कौन कौन से लाभ मिलते हैं ?

उत्तर—निम्नलिखित श्रवणादि दस बोलों की प्राप्ति होती है—

(१) साधु धर्मकथा व शास्त्रिक स्वाध्याय करते रहते हैं अतः सेवा करने वाले को सर्वप्रथम शास्त्र श्रवण का लाभ मिलता है।

(२) शास्त्रश्रवण करने से श्रुतज्ञान की प्राप्ति होती है।

(३) श्रुतज्ञान से विज्ञान (हेय उपादेय आदि का विशेष ज्ञान) होता है।

(४) विज्ञान होने से हेय (त्याज्य) पदार्थ को त्यागने की भावना होती है एवं प्रत्याख्यान का लाभ मिलता है।

(५) प्रत्याख्यान करने से संयम संवर होता है।

(६) संयम से अनास्रव होता है यानि नवीन कर्मों का आगमन नहीं होता।

(७) अनास्रव होने के बाद अनशन आदि बारह प्रकार के तप की ओर प्रवृत्ति होती है।

१—उत्तरा० २९।१०

(८) तप से व्यवदान होता है अर्थात् पूर्वकृत कर्मों का नाश होना है अथवा पूर्वकृतकर्मरूप कचरे की शुद्धि होती है।

(९) कर्मशुद्धि होने के बाद आत्मा अक्रिय अयोगी बन जाती है।

(१०) योगनिरोध होने पर जीव का निर्वाण मोक्षगमन होता है—यही आत्मा का अन्तिम प्रयोजन है।

प्रश्न ६—श्रावक के तीन मनोरथ समझाइए ?

उत्तर—पहले मनोरथ मे श्रावक यह भावना भावे कि वह शुभ दिन कब आएगा, जब मं अल्प या अधिक परिग्रह का त्याग करु गा।

दूसरे मनोरथ मे श्रावक यह चिन्तन करे कि वह शुभ समय कब प्राप्त होगा, जब मं गृहस्थावास को छोड कर सयम ग्रहण करूँगा।

तीसरे मनोरथ मे श्रावक यह विचार करे कि वह मगलवेला कब आएगी जब मं अन्तिम समय की सलेखना धार कर आहार पानी का त्याग कर एव पादोपगमन मरण अगीकार कर जीवन मरण की इच्छा न करता हुआ विचरूँगा।

मन वचन काया से—इन तीनों मनोरथों का अनुशीलन करता हुआ श्रावक महानिजरा एव महापर्यवसान (प्रशस्त अन्त) वाला होता है।

प्रश्न ७—श्रावक के चार विश्राम कौन कौन से हैं ?

उत्तर—जैसे भारवाहक मनुष्य के चार विश्राम होते हैं—

(१) भार को एक कधे से दूसरे कधे पर लेना (२) टट्टी पेशाब करते समय भार को नीचे उतारना, (३) रास्ते मे रात पडने पर

देवालय आदि मे विश्राम करना (४) जहाँ पहुँचना है वहाँ भार से बिल्कुल मुक्त होना। इसी प्रकार सासारिक भार म दबे हुए श्रावक के भी चार विश्राम माने गए हैं[१]—

१—अणुव्रत, गुणव्रत, शिक्षाव्रत एव अन्यान्य त्याग-प्रत्याख्यान करना—यह पहला विश्राम है।

२—सामायिक तथा देशावकाशिक व्रत का पालन करता हुआ ग्रहण किए हुए व्रतों मे रखी हुई मर्यादा का प्रतिदिन सकोच करना दूसरा विश्राम है।

३—अष्टमी चतुर्दशी, अमावस्या एव पूर्णिमा के दिन प्रतिपूर्ण पौषध करना तीसरा विश्राम है।

४—अन्तिम-सलेखना करके आहार-पानी त्याग कर, निरपेक्ष होकर जीवन मरण की इच्छा न करते हुए शान्तभाव म विचरना चौथा विश्राम है।

प्रश्न ८—श्रावक को भगवान ने क्या दर्जा दिया है ?

उत्तर—चार तीर्थों मे श्रावक-श्राविका के दो तीर्थ गिने हैं। साधुओं के धर्म पालन में उन्हे परम सहायक माना है। सहायक ही नहीं उनको माता पिता के समान भी कह दिया है। वे हर वक्त साधु साध्वियों का हित चिन्तन करते रहते हैं। स्खलना होने पर उन्हें एकान्त म मीठी वाणी से समझा कर सावधान कर देते हैं। किन्तु तीसरे आदमी को पता तक नहीं लगने देते।

१—स्था० ४।३।३१४

प्रश्न ९—क्या सभी श्रावक ऐसे हो सकते हैं?

उत्तर—विरले ही हो सकते हैं। भगवान् ने चार प्रकार के श्रावक कहे हैं[१]। १ माता पिता समान, २ भाई समान, ३, मित्र समान, ४ सपत्नी समान।

(१) बिना अपवाद के साधुओं के प्रति एकान्त रूप से वत्सलभाव रखने वाले श्रावक माता पिता के समान हैं।

(२) तत्वविचारणा आदि मे कठोर वचनों द्वारा कभी साधुओं से अप्रीति होने पर भी शेष प्रयोजनों मे अतिशय-वत्सलता रखने वाले श्रावक भाई के समान है।

(३) कारण वश साधुओं से अप्रीति होने पर भी आपत्तिकाल मे उसकी उपेक्षा करने वाले श्रावक मित्र के समान हैं।

(४) साधुओं में सदा दोष देखने वाले तथा उनका सदैव अपकार करने वाले श्रावक सपत्नी सौत के समान हैं—(ये केवल नाम के श्रावक हैं)।

दूसरी अपेक्षा से भी श्रावक चार प्रकार के कहे हैं—१ आदर्श समान, २ पताका समान, ३ स्थाणु समान, ४ खरकण्टक-समान।

(१) जैसे—दर्पण समीपस्थ पदार्थों का प्रतिबिम्ब यथार्थ रूप से ग्रहण करता है उसी प्रकार जो साधुओं से उपदिष्ट उत्सर्ग अपवाद आदि आगम सम्बन्धी भावों को यथार्थ रूप से ग्रहण करते हैं, वे श्रावक आदर्श (दर्पण) के तुल्य हैं।

नोट १ स्था ४।३।३२१

२ जैसे—अस्थिर पताका जिधर की हवा होती है उसी दिशा में फहराने लगती है, उसी प्रकार जिन का अस्थिर ज्ञान विचित्र देशना रूप वायु से प्रभावित होकर बदलता रहता है अर्थात् जिनकी बातें सुनते हैं उसी ओर झुक कर हाँ-हाँ करने लगते हैं—ऐसे श्रावक पताका (ध्वजा) के समान हैं।

३ जो गीतार्थ मुनि के समझाने पर भी अपना दुराग्रह नहीं छोड़ते वे अनमनशील-ज्ञान वाले श्रावक स्थाणु के समान हैं (लंबा या सूखा लकड़ा स्थाणु कहलाता है)।

४ जो समझाने पर अपना दुराग्रह तो नहीं छोड़ते बल्कि समझाने वाले को दुर्वचन रूप कांटों से बींध डालते हैं, वे श्रावक खर-कण्टक (बबूलादि के तीखे कांटों के समान हैं) प्रथम प्रकार के श्रावक श्रेष्ठ एवं शेष तीनों प्रकार के निकृष्ट हैं।



श्री जिनाय नम

श्राविका प्रेमी बाई के सथारा के उपलक्ष में

रचयिता—मुनि श्री धनराज जी

(राग —माढ)

मारो लाभ कमायोजी, थे सथारो धार ॥ मारो ॥
धन थांरो अवतार ॥ मारो ॥ ध्रुवपद ॥
दाव-घाव क्षव भाई पेची हो थांरे मन नाम।
सीधा-सादा जीवन थारो, आयो म्हारे दाय ॥ मारो ॥ १ ॥
जन जगत मे जनम्या परण्या धारया व्रत सुखकार
घोर तपस्या कर कर काढ्यो, मानव तन रो सार ॥ मारो ॥२॥
बुढापा मे क्रमश थांरो, तनडो होगयो क्षीण।
तुल्सी गणिवर कूमर मुनि ने, भेज्या मरजी कीन्ह ॥ मारो ॥३॥
वेग थोरा सारा आया, हो मन सबके चाह।
सथारो अब किणविध आवे, माजी ने सुखदाय ॥ मारो ॥ ४ ॥
भाव मनोगत जाणो मानो, थे माग्यो सथार।
मोभी बेट भट करवायो अवसर जाण उदार ॥ मारो ॥ ५ ॥
जोवन पर थारे कलश चढ्यो है अब नहीं फिकर लिगार।
मन दृढताई राखो पूरी होसी बेडा पार ॥ ६ ॥
मोहमाया मन मे मतल्यावो, ध्यावो प्रभु रो ध्यान।
धन मुनि प्रभु रो ध्यान धरयास्यू, निश्चित है निर्वाण ॥मा० ॥७॥

रचयिता :—मुनि श्री धनराजजी

(राग म्हारो रस-सेलडो)

धन्य, प्रेमो बाई ! अछी उजवाली आतम आपरी ध्रुव ॥
पीहरिया श्रावक सासरिया, जात पुगलिया जाणी ।
मूमर आदि पांच पुत्रतिम, पुत्री एक मुल्तानी जी ॥ धन्य ॥१॥
मोमी सुत ने श्री कालू रै, चरणां भेंट चढ़ायो ।
पाछ्"यो पोत अधिकाधिक त्याग वराग वधायोजी ॥धन्य ॥२॥
सवर सामाइक पोषादिक, कर कर जन्म सुधार्यो ।
बार बार कियो मास खमणवलि एकान्तर[1] तप धारयोजी ॥धन्य॥
क्रमशः काया क्षीण पडी तब रुक गयो फिरणो घिरणो ।
दैवण साफ्त घरमरो आयो, मूमर मुनि सुखकरणोजी ॥ धन्य ॥ ४ ॥
फागण सुद सातमनै, मुख सथारो मांगण लागी ।
तीन दिनारो हूँ[2] अब मुझ न, लो अनशन बडभागीजी[3] ॥ध०॥५॥
तीव्र भाव लख सध्या वेला सथारो पचखायो ।
मूमर मुनि जा मातजी री, जीवन सफल बणायोजी ॥ ध० ॥ ६ ॥
घत सस्याँ दिया दर्शन बलि बलि, धर्मध्यान सम्भलायो ।
अमरीबाई नवमी रे दिन चोविहार करवायोजी[4] ॥ धन्य ॥ ७ ॥
साझे साढे सात बजे अब सीझ गयो सथारो ।[5]
फतै कर गई प्रेमी बाई धन उणरो अवतारोजी ॥ धन्य ॥ ८ ॥
दो हजार तेवीस फागणरी सुद दशमी मनभाई ।
डूगरगढ प्रेमी बाई री धनमुनि महिमा गाईजी ॥ धन्य ॥ ९ ॥

१—बारह वर्ष तक ।
२—भान हुआ या अनुमान से कहा, कुछ खबर नहीं लेकिन बात सच्ची निकली ।
३—लगभग सध्या ६॥ बजे ।
४—दिन के पौन बजे अन्दाज ।
५—उनचास घण्टे बाद

—लेखक की अन्य प्रकाशित रचनाएँ—

हिन्दी	मूल्य	प्राप्ति स्थान
१ सच्चा धन	३७ पैसे	श्री जन श्वे० तै० सभा, मालेरकोटला (पंजाब)
२ प्रश्न प्रकाश	६० पैसे	श्री जन श्वे० तै० महासभा ३, पोर्चुगीज चर्च स्ट्रीट, कलकत्ता—१
३ चमकते चाँद	३० पैसे	श्री जन श्वे० तै० सभा
४ ज्ञान प्रकाश	१ ०० रु०	बीनासर (राजस्थान)
५ एक आदर्श-आत्मा	२८ पैसे	श्री मदनचंद सम्पतराय बोरड़
६ सोलह सतियाँ	१ ०० रु०	दुकान नं० ४०, धानमण्डी
७ मनोनिग्रह के दो मार्ग	१ ५० रु०	श्रीगंगानगर (राजस्थान)
८ लोक प्रकाश	१ २५ रु०	श्री जैन श्वे० तै० सभा
९ चारित्र प्रकाश	२ ५० रु०	बालोतरा (राजस्थान)
१० भजनों की भेंट	६० पैसे	
११ जन जीवन	६२ पैसे	श्री जैन श्वे० तेरापंथी सभा गंगाशहर बीकानेर (राजस्थान)
१२ ज्ञान के गीत	१ १० रु०	डा० जसराज जवरीलाल जैन त्रिपोलिया बाजार, जोधपुर
१३ चौदह नियम	५ पैसे	दलसुखराय सोहनलाल हिरावत चूरू (राज०)
संस्कृत		
१४ गणिगणगीतिनवकम्		
गुजराती		
१५ तेरापन्थ एटले शु ?		

हिन्दी	मूल्य	प्राप्ति स्थान
१६ धर्म एटले शुं ?	६२ पैसे	नेमीचन्द मोतीचन्द जवेरी पन्नामहल,
१७ परीषह सहो !	७५ पैसे	१३०, ट्रेसनेमत स्ट्रीट बम्बई १
उर्दू		श्री जैन एस० डी० सभा
१८ जीवन प्रवाह		नाभा (पंजाब)

—लेखक की अप्रकाशित रचनाएँ—

संस्कृत

१ देवगुरुधर्म-द्वात्रिंशिका
२ प्रास्ताविक श्लोकशतकम्
३ एकाह्निक-व्याख्यानकम्
४ श्री कालगणाष्टकम्
५ श्रीशान्तिकल्याणमन्दिरम्
६ भाविनी
७ देवमन
८ श्री भिक्षुशब्दानुशासनलघु वृत्तितद्धितप्रकरणम्

गुजराती

९ गुर्जरभजनपुष्पावलि
१० गुर्जरव्याख्यानरत्नावलि

हिन्दी

११ वैदिकविचारविमर्श
१२ सनातन-वैदिकविचार विमर्श
१३ अवधान विधि
१४ संस्कृत बोलने का सरल तरीका
१५ दोहा संदोह
१६ व्याख्यानमणिमाला
१७ व्याख्यानरत्नमञ्जूषा
१८ जनमनभावन रामायण व पद्मिनी आदि बीस व्याख्यान
१९ दृष्टान्तसुमनमाला
२० दृष्टान्तद्विपञ्चाशिका

राजस्थानी

२१ धनावतो
२२ सवयायतक
२३ मोतीडा ढालें
२४ प्रास्ताविक ढालें
२५ कथाप्रबन्ध
२६ छ बड़ व्याख्यान
२७ ग्यारह छोटे व्याख्यान
२८ सावधानी रो समुद्र

पंजाबी

२९ पंजाब पचीसी